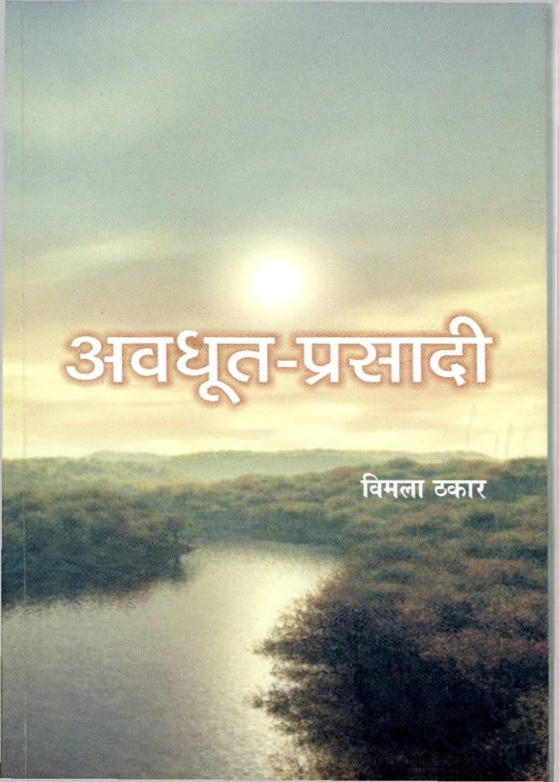
अवधूत-प्रसादी
विमला ठकार

अवधूत–प्रसादी

(नारेश्वर ध्यानशिविर के प्रवचन)

विमला ठकार

VIMAL
PRAKASHAN TRUST
'Vimal Saurabh'
Vaniya Wadi Street No. 9,
Rajkot-360 002, (Guj.)
Mob. : 99255 29096
E-mail : vimalprakashantrust@yahoo.com

विमल प्रकाशन ट्रस्ट
अहमदाबाद

Avadhootprasadi

अवधूत–प्रसादी

© विमला ठकार

प्रथम संस्करण : १९८२

द्वितीय संस्करण : २००९

मूल्य : रु. ६०/-

प्रकाशक और प्राप्तिस्थान

विमल प्रकाशन ट्रस्ट

- 'संतकृपा', १०३, रत्नम् टावर,
  चीफ जस्टीस के बंगले के पीछे,
  जजीस बंगलो रोड, बोडकदेव,
  अहमदाबाद–३८० ०५४
  टेलि./फेक्स : (०७९) २६८५ ४९९१

- 'शिवकुटी'
  आबू पर्वत – ३०७५०१ (राजस्थान)
  टेलि./फेक्स : (०२९७४)२३८५९६

मुद्रक : मुद्रेश पुरोहित, सूर्या ऑफसेट,
सेटेलाइट बोपल रोड,
आंबली गाम, अहमदाबाद ३८० ०५८
फोन : (०२७१७) २३०११२
E-mail : suryapress@gmail.com

8c325

द्वितीय संस्करण

अवधूत–प्रसादी का प्रथम संस्करण सन् १९८२ में प्रकाशित हुआ था। पिछले कई वर्षों से उसकी प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। कई जिज्ञासुओं की ओर से उसकी माँग होने के कारण इसका द्वितीय संस्करण करने का निश्चय हुआ।

जीवनविभु की परम कृपा से वह पावनयज्ञ-कर्म पूर्ण होने पर द्वितीय संस्करण संपन्न हो सका, इससे हम सहृदय आनन्दित हैं।

हम आशा करते हैं कि इससे सभी जिज्ञासु अति लाभान्वित होंगे और साधना-विषयक यथोचित समाधान और मार्गदर्शन उपलब्ध कर सकेंगे, ऐसी श्रद्धा है।

श्री गुरु पूर्णिमा
७-७-२००९

विमल प्रकाशन ट्रस्ट
अहमदाबाद

– हरि ॐ –

प्रसाद–वितरण

सन् १९८१ (फरवरी – १ से ५) में नारेश्वर (बड़ौदा के निकट) नर्मदातट पर श्रीरङ्ग अवधूत आश्रम–प्राङ्गण में श्रद्धेया "दीदी" (विमलाजी) के निर्देशन में ध्यान शिविर हुआ था। इसका आयोजन मुख्यतया बड़ौदा की पाँच धाराओं के मित्रसङ्गम द्वारा हुआ था – सर्वोदय मण्डल, थियॉसॉफिकल सोसाइटी, श्री अरविन्द मण्डल, श्री नारायण–भक्त–मण्डल, श्रीरंग–अवधूत भक्तमण्डल। सभी धाराओं के प्रायः १०८ जिज्ञासु साधक शिविर में सम्मिलित हुए थे। वहाँ हुए दीदी के प्रवचन एवं प्रश्नोत्तर अवश्य ही प्रकाशित होने चाहिए ऐसी सभी की अभिलाषा रही। सर्वप्रथम बड़ौदा से ही 'भूमिपुत्र' के सम्पादक, सर्वोदय मण्डल के वरिष्ठ बन्धु एवं नारेश्वर शिविर–आयोजन में केन्द्ररूप समायोजक श्री कान्तिभाई हिं. शाह ने दीदी के सम्मुख वह अभिलाषा व्यक्त की। दीदी ने सहज ही कहा कि "यह तो अवधूत-प्रसादी है; अवश्य बाँटी जाय। वास्तव में इस स्थान की प्रशान्ति, वातावरण की प्रसन्नता अवर्णनीय है। यहाँ भूमि के कण–कण में अबाध तपोबल भरा पड़ा है। जैसे आम के सुपक्व फल में मधुर रस भरा हो, वैसे इस भूमि में श्रीरङ्ग अवधूतजी का तप एकरस सिंचा–समाया हुआ है। अब तक अनेक शिविरों में मैंने बहुत कुछ कहा है, परन्तु इस शिविर में जो कुछ कहा गया है, वह अवधूतजी का ही प्रेरणा–प्रसाद है।"

इस तरह पुस्तक का नाम भी निश्चित हो गया। गुजरातीभाषी मित्रों के विशेष आग्रह के कारण यज्ञ प्रकाशन, बड़ौदा की ओर से पहले गुजराती भाषा में सम्पादन प्रकाशन सम्पन्न होकर सितम्बर, १९८१ में गुजराती 'अवधूत प्रसादी' पाठकों के समक्ष आ गई। अतीव आनन्दसहित उसका स्वागत एवं आस्वादन होने लगा। गुजराती भाषा पढ़ने–समझने में जिन्हें कठिनाई है, ऐसे पाठकों की ओर से मूल हिन्दी प्रकाशन के लिए अनुरोध बढ़ने लगा।

भी पत्र नहीं मिला। मैं तो देखने लगी उनके चेहरे की ओर। "यह क्या कह रहे हैं, विनोबाजी!" वे बोले, – 'अरे ! लिखे हुए पत्र नहीं, बिना लिखे हुए पत्र मिले कि नहीं ? तुम अस्पताल में हो और ऑपरेशन होनेवाला है, यह मुझे मालूम था। और स्मरण ही पत्र-लेखन नहीं है क्या ?' विनोबाजी यह पूछ रहे थे। फिर खुद ही हँसकर बोले, "अरे बापू होते न ! तो पता नहीं तेरे पास कितने पत्र पहुँचते, तार भी पहुँचते, आदमी भी पहुँचते, ऐसी लोकसंग्रह की उनमें कला थी। वे तो लोकसंग्रह के कलाकार ही थे और यह तुम्हारा बाबा ! फक्कड़ संन्यासी है। भूदान आंदोलन में जो लोकसंग्रह हुआ है वह Because of Vinoba नहीं हुआ, Inspite of Vinoba हुआ है। विनोबा के कारण नहीं है, विनोबा के बावजूद। मैं कहीं आन्दोलन करने, लोकसंग्रह करने निकलता? लेकिन नियति ने गर्दन पकड़ ली। बापू के जाने के बाद मुझे निकाला।"

एक महान् व्यासङ्गी, प्रखर विद्वान, प्रतिभाशाली व्यक्ति, संन्यासी, फक्कड़ तबियत का आदमी; उसको चौदह साल नियति ने घुमाया देश में। एक अत्यन्त महत्त्व का क्रान्तिपूर्ण कदम उठवाया उनसे। दुनिया को मालूम हो कि यह भी एक रास्ता हो सकता है। तो अपनी अपनी तबीयत की, अपनी अपनी रुचि की बात है। बापू की तबीयत अलग थी तो उनकी साधना और सेवा इस ढंग से एक हो गई और विनोबाजी शायद नहीं निकलते, लेकिन देश की परिस्थिति ने उनको निकाला और कर्म करवाया। तो भाई ! एक ही बात अन्त में ध्यान में रखें कि यह जो द्वैत दिखता है, उसमें द्वन्द्व खड़ा किये बिना द्वैत के सेतु पर से पार होकर जो निरामय जीवनसत्ता है; निरपेक्ष, स्वयम्भू, स्वाश्रयी सत्ता है; वहाँ तक पहुँचने के लिए जो भी कर्म आप करें, वह अपनी तबीयत के अनुसार साधना बन जायगा।

(३–२–'८१ मध्याह्न बैठक में)

चौथा प्रवचन

वैश्विक चेतना के महासागर में

"यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवम्
तदु सुप्तस्य तथैवेति।
दुरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकम्
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥"

प्रभु ने अनुग्रह करके प्रभु-नाम सुनने की जो इच्छा थी वह पूरी की। यह बात सही है कि दो दिन पहले जब ऊपर के हॉल में मैं प्रवचन कर रही थी और अचानक खिड़की से बाहर नर्मदा की ओर नज़र गई, तो मुझे वहाँ धार्मिकलालजी जैसा कोई लगा। एक भ्रम होगा, समझकर बात टाल दी; लेकिन ऐसा दो बार हुआ तो मैंने कान्तिलालजी सुतरिया से कहा कि भाई ! धार्मिकलालजी बड़ौदा में हैं या नहीं, देख लीजिये। यदि यहाँ आ सकते हैं तो उनको बुला लायें। वे आ भी गये।

ये भारतीय संस्कृति और भारतीय संस्कारों के वाहक हैं। ये रस और भाव जागृत करके जनता को शिक्षण देनेवाले लोकशिक्षक हैं, इनका परिचय भारतभर में हो ऐसी इच्छा रहती है। कितनी प्रतिकूल परिस्थिति में उनकी कथा पड़ी यह आपने देखा। जिस प्रकार की संगत चाहिए, वह भी नहीं थी; इसलिए बड़ा संकोच हो रहा है।

अभी अभी मुझे याद आया, तब मैं कलकत्ते में थी और वहाँ मेरे एक परिचित कलाकार रहते हैं डागर साहब, ध्रुपद--धमार के अधिकारी हैं। ऐसे ही मैंने एक बहन से कहा कि डागर साहब कलकत्ते में हैं ? ज़रा देखो तो। डागर साहब कलकत्ते में ही थे, पखावज पर संगत करनेवाला कोई नहीं था; लेकिन बिना संगत के एक घण्टे तक यमन राग में "हरिः ॐ नारायण" इतना ही सुनाया। आज भाई धार्मिकलालजी ने भी यही किया। मैं हृदयपूर्वक आशीर्वाद देती हूँ कि वे दीर्घायु आरोग्य प्राप्त करें। उनके द्वारा केवल गुजरात में ही नहीं; भारतभर में यह जो रसात्मक लोकशिक्षण है, यह ज्ञानमय प्रवचनों से शतबार अधिक प्रभावी है। रस के द्वारा, भाव-जागृति द्वारा जो संस्कार दिये जाते हैं वे बिना किसी प्रतिकार के ग्रहण होते हैं। यह रस की ख़ूबी है। "ढाई अक्षर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय"।

उन्होंने सन्त तुकारामजी और नरसिंह भगत की भी बात छेड़ी ! एक ओर यह साक्षात्कार कि –

''अखिल ब्रह्मांडमां एक तुं श्रीहरि। जूजवे रूपे, अनंत भासे।
देहमां देव तुं तेजमां तत्त्व तुं। शून्यमां शब्द थई वेद वासे।''

यह जिसका साक्षात्कार था, उनका यह प्रभुप्रेम में मस्त जीवन, इस देश की मिट्टी के कण–कण में सुनाई हुई अद्‌भुत सत्यकथा है। वैसे ही तुकाराम ! उनकी अद्वैत की भूमिका उतनी ही पक्की–

''तुका म्हणे आम्हीं विठ्ठलांचे दास।
केला पिंडी ग्रास ब्रह्माण्डाचा।''

पिंड में मैंने ब्रह्मांड का ग्रास कर लिया है। निर्बलों की, निस्तेजों की, निष्प्राणों की भक्ति नहीं ! ओजवती तेजस्विनी ऐसी भक्ति। तो ऐसे जो महाभागवतों और शूरवीरों का स्मरण आपको कराया गया। बड़े आनन्द की बात है।

आप कहेंगे ध्यान के, योग के शिबिर में इसका प्रयोजन क्या ? इसका प्रयोजन ज़रूर है। कल के प्रभात में हमने देखा था, एक है अन्वय (संगति) भक्ति और दूसरी है व्यतिरेक (असंगति) भक्ति। प्रभु सर्वत्र हैं, सर्वव्यापी हैं। सदा से हैं। सदा रहनेवाले हैं। ऐसी जो उनकी सत्ता, उनके शब्द में ज्ञान से चित्त को सन्तोष नहीं होता, उनसे भाव–सम्बन्ध बाँधें तो कैसा और कैसे ? इसलिए निराकार निर्गुण को सगुण साकार में बाँधने का ज्ञान और कला इस देश में विकसित हुई। छोटी-सी मूर्ति को – आराध्य विग्रह को – सम्पूर्ण निर्गुण, निराकार और सर्वव्यापी परमात्मा का प्रतिनिधि माना है। वह छोटा-सा विग्रह तो सर्वव्यापी हो नहीं सकता। उपासना – आराधना विग्रह की होती है; मूर्ति की नहीं, प्रतिमा की नहीं । मन्त्रों से आवाहन करके प्राण-प्रतिष्ठा करने के बाद मूर्ति या प्रतिमा आराध्य विग्रह बन जाती है। सगुण साकार के माध्यम से सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी घट-घटवासी ऐसे परमात्मा से सम्बन्ध बाँधना, भावसम्बन्ध बाँधना कि आँखों में बस जाय, हृदय में रम जाय, ताकि व्यक्ति की जहाँ नज़र पड़े वहाँ वही नज़र में आये। तुकाराम कहते हैं कि जितने विषय थे, वे सब मेरे लिए नारायण हो गये हैं। इतना ही नहीं ! –

''जन्म घेणे लागे वासनेचा संगे। ते चि आतॉं झाली हरिरूप॥''

जिस वासना के कारण जन्म लेना पड़ता है, तुकाराम कहते हैं, मेरी

वासना हरिरूप हो गई है। तो यह एक मार्ग है। हृदयप्रधान जिनका जीवन हो, उनके लिए यह एक मार्ग है। जैसे बुद्धिप्रधान, ज्ञानमार्गी, ध्यानमार्गियों के लिए दूसरा रास्ता हैं, मन से ऊपर उन्मनी में जाने का। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति को लाँघकर तुरीयावस्था में जाने का, देह के साथ और मन के साथ तदात्मता साधकर जो बैठे हैं, उस तदात्मकता के कारागार से मुक्त होकर अपना जो निरपेक्ष स्वरूप है, स्वाधीन और स्वाश्रयी स्वरूप है, उसके साक्षात्कार का दूसरा रास्ता है। **'साधनानाम् अनेकता'** -- यह अपने देश की और अपनी संस्कृति की विशेषता है कि एक ही मार्ग और एक ही पन्थ का 'स्टीम रोलर' नहीं ! जहाँ जो व्यक्ति खड़ा है, वहाँ से वह प्रभु- अनुगामी बने; ऊर्ध्वगामी बने। वहाँ से निज रूप की तरफ़ जाने की यात्रा शुरू हुई। तो यह है भक्ति ! यह आपको, जो जानते नहीं हैं उनको, एक नया परिचय हो गया होगा –जिनको आप विमला बहन कहते हैं – उनका। हम पले हैं प्रभु के नाम पर और प्यार पर –

"आशिक हैं तेरे नाम पर दीवाने बन बैठे।
पैदा न होता दर्द कभी मेरे रूह के खजाने में,
सिर काट कर तेरे द्वार पर सरदार बन बैठे।"

नाम को, शब्द को, शब्द के साथ यात्रा करनेवाले सहचारी भाव जिस नाद में रहते हैं उस नाद को भी छोड़कर, ध्वनि को छोड़कर, अब आगे चलें मौन में।

मानसिक स्तर छोड़ना ही समर्पण

संसार शब्द में है। मन में संसार पड़ा है, क्योंकि मन के भीतर के आकाश में शब्द पड़ा है। शब्दात्मिका काया है। सारे संस्कार जो अंकित हैं हमारे भीतर की सत्ता पर -- शब्दमय हैं। और संस्कार कितने ही भव्य हों, कितने ही व्यापक हों, आखिर यह मनुष्य-निर्मित दुनिया है। इसकी गहराई में हमें नहीं जाना है। तो संस्कारयुक्त (conditioned) एक चेतना है, जिसके स्तर पर हम जीते हैं। आज प्रभात में जिस 'मन' की बात हुई थी वह करण है। जिसकी क्रिया यान्त्रिक है। जिसकी जड़ें भूतकाल में हैं और जो मानवीय ज्ञान पर, अनुभूति की सीमाओं को लाँघकर आगे नहीं जा सकता है। बाहर नहीं निकल सकता है। ऐसे 'मन' से जिसको ध्यानावस्था कहते हैं, समाधि कहते हैं या आगे चलकर सहजावस्था कहते हैं, उसकी उपलब्धि नहीं हो सकती। इसलिए व्यक्त जगत् में मन का उपयोग है; लेकिन अव्यक्त जगत् में मन का

साक्षीभाव चाहिए। और जहाँ अनन्त के साथ सम्बन्ध आता है, वहाँ मानवनिर्मित दुनिया से बाहर अपना जो जीवन है, उसमें जीना पड़ता है। तो वहाँ अनन्त के प्रांगण में न मन का कर्ता-भोक्ता भाव मदद करता है, न द्रष्टाभाव या साक्षीभाव मदद करता हैं। वहाँ तो सम्पूर्णतया लीन होना–अपनी सभी गतियों को विसर्जित करके मौन में चले जाना-यही नम्रता की पराकाष्ठा है। इसीको समर्पण कहते हैं। मन की समस्त क्रियाओं का विसर्जन।

आज सारे संसार के सामने सवाल है कि 'मन' को कैसे लाँघें? मन और बुद्धि की शक्तियाँ यन्त्रों में भर दी गई हैं। कॉम्प्यूटर्स और इलेक्ट्रोनिक मस्तिष्क में स्मरण-शक्ति तक भर दी गई है। ये जो कॉम्प्यूटर्स हैं, इनका प्रदर्शन लन्दन में देखा था। उनको आप कहिए – एक चिट्ठी डालकर – मुझे रवीन्द्रनाथ का चित्र चाहिए। मैंने लिख दिया था उस यन्त्र पर; एक मिनट में इन्द्रधनुष पर कविता बनकर आयी। ये जो इलेक्ट्रोनिक्स हैं, ये विद्यार्थियों के जो परीक्षा पेपर्स हैं उनकी जाँच करते हैं; भाषा और गणितशास्त्र के भी। Permutation और Combination की शक्ति और स्मरणशक्ति भर दी गई है उनमें!

विचारों पर मनका, संस्कारों का वर्चस्व

मन का काम है – ज्ञान को ग्रहण करना। उसको Filling in the data कहेंगे। यन्त्र के सम्बन्ध में और अपने मानवीय जीवन के संदर्भ में उसको संस्कार देना कहेंगे। तो जो भर दिये गये संस्कार, उनका पुनरावर्तन करना, उनमें आवश्यक फेरफार करना – यह सब मन की क्रियाएँ हैं। मेधा है, धृति है, स्मृति है। वहाँ तक तो यन्त्र गया; तो समझ में आ गया कि अरे! यह तो यान्त्रिक क्रिया है। इस मन पर मैं मोहित था ? इस मन की प्रतिक्रिया पर मुग्ध था ? लोलुप था उसमें ? नहीं, इससे भिन्न, इससे सर्वथा स्वतन्त्र मेरी कोई सत्ता हैं या नहीं ? आज की बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में मनुष्य-जाति के सामने सवाल है। मुझे आशा है कि आप लोग पढ़े-लिखे हैं, आपने देखा होगा कि विचार की शक्ति, धन की शक्ति, शस्त्र की शक्ति और राजनीति की शक्ति, सत्ता की शक्ति – सब परास्त हो चुकी हैं। इस देश में ही नहीं, मैं तो यह वैश्विक मानवीय जीवन के संदर्भ में कह रही हूँ। ये शक्तियाँ परास्त हो गई हैं, इसलिए मनुष्य खोज रहा है – मन से उन्मनी में जाने का, जो मौन नाम का एक आयाम है, शून्य नाम का जो एक परिमाण है जीवन का,

उसकी खोज कर रहा है। एक आन्तरिक क्रान्ति की खोज; ताकि उसमें से एक नया मानव पैदा हो, जो मन का गुलाम नहीं है और तन का गुलाम भी नहीं है। नया मानव फिर नया समाज बनायेगा। यह बात चार दिन से कह रही हूँ। इसलिए नहीं कि आपको जीवन-विमुख बनाना है, बल्कि जीवन जीने के लिए यह जो शरीर और मन के संस्कार हैं वे अब मर्यादित हैं। पूरे नहीं पड़ रहे हैं। ज्ञान एक तरफ़ रह जाता है, जब विकार ज़ोर करता है।

रक्षक ही भक्षक बन गये

साम्यवादियों को इन विकारों का अनुभव हो गया है। उन्होंने कहा था – "Workers of the world unite, wipe out the state-boundaries and let there be the rule of proletariat. "देश-देश के बीच जो मानव-सर्जित दीवारें हैं, वे ढह जायँ ! श्रमितो, दलितो ! सब एक हो जाओ और हम राज्यमुक्त, शोषणमुक्त समाज बनायेंगे।" यह स्वप्न था। विचार दिये गये, बन्दूक का भय दिखाकर। जिन्होंने विचार ग्रहण नहीं किये, उनकी गर्दन उतार ली; लेकिन हावी हो गया मन इस ज्ञान पर । और जो मानवतावादी थे, वे राष्ट्रवादी कैसे बने ? उनमें से ही एक व्यवस्थापक वर्ग (managerial class) उत्पन्न हुआ। यह आपने साम्यवादी देशों में देखा। वह रशिया हो या चायना और इस देश में गांधीजी के विचारों का, सर्वोदय का ज्ञान दिया गया, प्रचार हुआ। पर संस्कार हावी हो गये और सत्ता-संपत्ति का प्रलोभन गांधीजी की दिखाई हुई दिशा से हटाकर देश को खींच कर कहाँ ले गया है; जहाँ मनुष्य पशु से भी नीचे उतर रहा है। यह हमारे सामने है।

शून्य में छलाँग मारना होगा

ज्ञान में भीतर पड़े हुए संस्कार हैं, भीतर पड़े हुए राग-द्वेष हैं, वे बलवत्तर हैं यह मनुष्य ने देख लिया। उनका निग्रह, पीड़न, दमन करने से या उन्हें कुचल डालने से वे जाते नहीं ! एक जगह कुचला तो दूसरी जगह खड़े हो जाते हैं। इसलिए अब इस मन के साथ क्या करें, यह सवाल है। It's a question of survival of the human values. यह मानवीय मूल्यों में सम्पूर्ण क्रान्ति की बात है। शब्दों के किनारे आकर, ज्ञान के किनारे आकर नम्रता से खड़े हों और यह कहें कि प्रभु ! यह जो मन है, यह ज्ञान है, यह बुद्धि, यह संस्कार लेकर परिवर्तन नहीं होता है। इन सबके साथ अब अकर्मण्यावस्था में प्रवेश कर रहे हैं। कुछ नहीं करना है मुझे। तू क्या करेगा, वह देखना है।

व्यक्तिचेतना का विश्वचेतना में लोप

तो I consciousness, self ego – यह जो 'मैं, मेरा' का भाव है, मैं पृथक् हूँ संसार से, यह जो भाव पृथक्ता का – The myth of seperation nourished by the intellect and verbalisation – इसको छोड़ देना है। जैसे किनारे पर से नदी में छलाँग लगाते हैं; ऐसे यदि मनुष्य साहस करे और भीतर के शून्य में छलाँग लगाये, कूद पड़े। यही हमें सुबह-शाम करना है। The first and the last step ! उतना ही करें। अपने आपको छोड़ दें विश्वम्भर पर, वैश्विक चेतना पर।

महाशक्ति पर श्रद्धा चाहिए

जो सत्य-साक्षात्कार और जीवन के अर्थघटन के लिए बुद्धि को अंतिम प्रमाण मानते है, वे बुद्धिनिष्ठ लोग मेरी इस बात को स्वीकार नहीं कर पाते हैं। अध्यात्म बुद्धि-विरोधी नहीं है; लेकिन वह बुद्धि से मर्यादित भी नहीं है। जहाँ बुद्धि की पराकाष्ठा आ जाती है, जिससे आगे बुद्धि नहीं जाती, वहाँ श्रद्धा का प्रवेश है। पहले कहा गया था कि जन्म-मरण के तरंग जिस जीवन-सागर पर उठते हैं, उस जीवन में श्रद्धा होनी चाहिए। Faith in the divinity of life. जीवन मनुष्य-निर्मित दुनिया नहीं है। व्यक्त और अव्यक्त के पीछे एक महासत्ता काम करती है, इस पर जिनकी श्रद्धा है, वे ही ध्यान तक पहुँच सकते हैं।

मनुष्य इन्द्रियों से जिसका स्पर्श कर सकता है उस व्यक्त सृष्टि या निसर्ग की यहाँ बात नहीं है। मानवसर्जित समाज और इन्द्रियगोचर व्यक्त सृष्टि के भीतर, पीछे, अन्य जो कुछ भी कहिए – जीवन की सत्ता है; उसे सूक्ष्मेन्द्रियों से स्पर्श कर सकते हैं। इसमें जिनकी श्रद्धा है वे ही ध्यान में जा सकेंगे; और जिन्होंने यह मान लिया कि नहीं जी, हमारी बुद्धि में नहीं आता है, मौन में हम बैठे और मनकी समस्त क्रियाएँ समेट ली हैं; फिर आगे क्या होगा ? हमें कैसे पता चलेगा ? यह यक्ष-प्रश्न जिनके सामने खड़ा है, उनके लिए ध्यान नहीं है।

विश्वात्मा के साथ एकरूप

ध्यान एक ऐसी अवस्था है, जिसमें आपका रूप पृथक् नहीं रह सकता है विश्वसत्ता से। आपका रूप पृथक् नहीं रह सकता है उस महाशून्य से, जो आपके भीतर और बाहर विराट् रूप में प्रसरित है, फैला हुआ है।

इसके साथ अब घुलमिल जाने की बात है।

अब बात इतनी-सी है कि पृथक् रहना है या घुलमिल जाना है। भक्ति में भी वही आता है, ज्ञान में भी वही और ध्यान में भी वही। तो बुद्धि की समझ में आये न आये, अहंकार अनुभूति के चीमटे में जो होनेवाली घटना है उसको पकड़ पाये - न पाये, छोड़ दिया अपने आपको। लंगर खोल दिया है। अब जो होना है सो हो। इस प्रकार की जिनकी शक्ति हो, साहस हो; जिनका दृढ़ निश्चय हो, वे मन में प्रवेशें, शून्य में प्रवेशें, यह हाथ जोड़कर कहना है; क्योंकि एक अजीब अवस्था में से गुज़रना है। वहाँ सब क्रियाओं को समेट लेंगे। विचारों का तनाव नहीं, भावनाओं का दबाव नहीं, वासनाओं के आवेग नहीं हैं। ऐसी जब अवस्था होगी, सारा का सारा आपका शरीर एक ऐसी विश्रान्त अवस्था में पहुँचेगा। वहाँ शून्य में समाई हुई है ऋतम्भरा प्रज्ञा, आपकी बुद्धि नहीं । वह तो कर्ममुक्त होकर पड़ी है कोने में। आपका अहंकार नहीं, लेकिन जो विश्वव्यापिनी है ऐसी सत्ता जागृत होगी। उसको धारण करने की शक्ति यदि मनुष्य में नहीं हो, तो मुश्किल हो सकती है, विक्षिप्तता आ सकती है।

यदि एक ओर मौन में बैठे और दूसरी ओर कोने में छिपकर बैठेगी इच्छा, कि 'क्या होता है इसमें ? ज़रा देखूँ तो !' तो यह नहीं हो सकेगा। और दूसरा, आहार-विहार आदि पर संयम से यदि शुद्धि न हो, तो यह प्रज्ञा की जागृति की जो गति है वह सहन नहीं होती है। इसलिए ध्यान में बैठनेवाले, मौन में बैठनेवाले एक नहीं, दो नहीं, सैंकडों युवक-युवतियों के चित्त विक्षिप्त हुए हैं।

शून्य में रिक्तता नहीं है

आहार-विहार आदि की शुद्धि नहीं है और गये short cut के लिए। कहीं जाकर शक्तिपात करा आये, कहीं जाकर कृत्रिम उपाय करके आये। जब बैठे ध्यान में, शून्य में उनका प्रवेश हुआ; तब कठिनाई सामने आयेगी। अन्दर एक-एक रक्तगोलक में वह शून्य है और शून्य रिक्त नहीं है। मेरे मित्रो ! शून्य पूर्ण है। शब्द अधूरे पडेंगे यहाँ। द्वैत के वर्णन में, द्वैत की भूमि में जिनका जन्म है वे शब्द द्वैतातीत भूमिका में जो होता है, उसके वर्णन में हमेशा पंगु पड़े हैं। अधूरे ही रहे हैं। तो मैं कह रही हूँ, जहाँ तक शब्द को ले जायेंगे वहाँ तक वह जो शून्य में समाई हुई प्रज्ञा आपके अणु-अणु में, आप और मेरे बीच जो अवकाश दिखता है उसमें

भरी पड़ी है; वहाँ रिक्तता नहीं है। शून्य है लेकिन पूर्णता से भरपूर। पूर्णता से भरा हुआ शून्य है। यह मेरी जेब में से बात नहीं कर रही हूँ, जीवन ही ऐसा काव्यमय है ! क्या करूँ ?

अपार्थिव ऊर्जाओं के क्षेत्र में

यह शून्य अनेक ऊर्जाओं से पूर्ण है, जो ऊर्जाएँ मानवीय संस्कारों से दूषित नहीं हैं। मानवीय मन ने पार्थिव शब्द को लेकर जहाँ स्पर्श नहीं किया है, ऐसी ऊर्जाएँ हैं। तो शून्य में वे शक्तियाँ जागृत होती है; ऊर्जाएँ प्रवाहित होती हैं। आप बैठेंगे तब मालूम होता है कि मेरा शरीर तो काँप रहा था। फिर आपको याद आता है कि मुझे तो कहीं प्रकाश दिखा। मुझे तो कहीं नाद सुनाई दिया। तो इन घटनाओं को महत्त्व देने की इच्छा होती है। इनको ज़रा भी महत्त्व देने की ज़रूरत नहीं। यह तो शब्द से – नाद से मुक्त होकर अन्दर प्रवेश कर रहे हैं। कुछ संस्कार रह गये थे, जो साथ चले तो कुछ दिखा; लेकिन प्रकाश देखा, तो क्या आध्यात्मिक अनुभूति हुई ? नहीं भाई, अध्यात्म यह अनुभूति नहीं हैं, अध्यात्म में हैं केवल सत्ता। **"सत्तामात्रशरीरं प्रणमत गोविन्दं परमानन्दम्"** सिर्फ़ सत्ता है, अनुभूति है, अनुभोक्ता नहीं, अनुभव नहीं।

अनुभूति को महत्त्व न दें

बीच में जो अनुभूतियाँ आती हैं, उनको अपनी उपलब्धियाँ मानकर मनुष्य वहाँ अटक न जाय। बड़ा सुख लगता है उसमें। प्रकाश भी दिखेगा, जो अन्दर ही है। नाद सुनाई देंगे, जो अन्दर पड़े हैं। सप्तरंग हैं, सप्त नाद हैं। दस प्रकार की अग्नियाँ हैं। उन अग्नियों की शिखायें हैं, ज्योतियाँ हैं। देह के विभिन्न स्थानों में विभिन्न प्रकार के प्रकाश झलक उठेंगे, लेकिन इनको महत्त्व न दें। जब तक अनुभूति का महत्त्व मन में है, तब तक अनुभोक्ता के रूप में जो अहं की ग्रन्थि हैं वह दृढ़ होती चली जाती है। Then, you are still on the level of I consciouness, you are prisoner of the mind still. अनुभूतियाँ तो होती हैं; लेकिन इनका इनकार न करें। होती हैं तो उनको रोकना नहीं है। उसी प्रकार उन्हें बहुत महत्त्व भी न देना। मुझे वह हुआ, यह हुआ। अरे भाई ! निकले हैं बम्बई से पूना जाने के लिए तो बीच में खण्डाला, लोनावला आ ही जायेगा। उसमें क्या है ? जो जायेगा उसके रास्ते में आयेगा। उसमें क्या बहुत बड़ी बात आ गई ! लेकिन मनुष्य उसे महत्त्व देता रहता है। आपसे मेरी बहुत नम्र विनती हैं कि इन अनुभूतियों

को बहुत महत्त्व न दें। आज समाज इतना भोला है। अध्यात्म के नाम से इतना शोषण चलता है, इतना पाखण्ड चलता है कि बात न पूछो। धर्म के नाम से चलता है, तो अध्यात्म में क्या नहीं चलेगा ? जो लोग बहुत ही भावुक हैं, स्वतंत्र चिन्तन नहीं करते हैं, अपनी समझ की परवाह नहीं करते है; वे फिर इन सब में बह जाते हैं। अध्यात्म इतना सस्ता नहीं है कि तीन दिन में समाधि लग जाय, सात दिन में विदेहमुक्ति आ जाय। आज अध्यात्म को बहुत बाज़ारू बना दिया है। बड़ा सस्ता बनाया जा रहा है। या फिर –

''कोई क्रिया–जड़ थई रह्या, शुष्क ज्ञानमां कोई।
माने मारग मोक्षनो, करुणा उपजे जोई॥''

यह श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा है।

साधनापथ पर जो घटनाएँ होती हैं, इन घटनाओं की बात आज आपसे करनी है; ताकि आप घर जायेंगे, यदि प्रभु का अनुग्रह होगा और मौन में या ध्यान में बैठना शुरू कर देंगे, तो इन सब चीज़ों से, इन घटनाओं से आप गुज़रेंगे। बहुत हुआ तो लिखकर रख लें कि आज ऐसा–ऐसा हुआ; लेकिन इसकी चर्चा न करें। दस आदमियों के पास कहते न घूमें। कहते–कहते फिर मन में ऐसा भाव आ जाता है कि इनसे मैं अलग हूँ और मुझे कुछ हो गया है।

अहंमुक्ति ही अध्यात्म

यदि अध्यात्म की साधना अहंकार को पुष्ट करेगी, तो निरहंकार होने के लिए कहाँ जायेंगे ? यदि प्रभु का नाम लेते–लेते 'मैं नाम ले रहा हूँ' इस प्रकार का अहंकार वहाँ होगा, तो निरहंकार होने के लिए कहाँ जायेंगे ? आख़िर मामला तो एक ही है। अहंकार की ग्रन्थि में से बाहर निकलना है न ! The center of the consciousness in the name of I, the ME, the ego – इससे मुक्त होना है। और तो कुछ मुक्त होने के लिए बाहर है नहीं। बाहर की कोई चीज़ मनुष्य को बाँधती तो यह है –'मैं हूँ', 'मैं देह हूँ', 'मैं मन हूँ', 'यह मेरा है', 'मेरी झोंपड़ी है', 'यह मेरा ज्ञान', 'यह मेरा अज्ञान', 'यह मेरा पाप', 'यह मेरा पुण्य' – यही तो बाँधता है 'अहं' और 'मम'–भाव।

गतिमुक्त सत्ता में प्रवेश

इस अहं और मम के दायरे से दामन में बिना दाग़ लगाये निकल

जायँ, वही तो बेड़ा पार होना है। इसलिए घटनाओं को महत्त्व न दें। घटनाओं की चर्चा न करें। जब घटनाओं की चर्चा नहीं करते, होनेवाली घटना में रस नहीं लेते, तो इस प्रकार की जो अनुभूतियाँ होती है–प्रकाश दिखाई दिया, नाद सुनाई दिया, कुछ सगुण रूप दिखाई दिया –प्रणाम करें उसको । हिन्दू के घर में पैदा हुए हैं, तो संस्कार हैं । तो किसीको शिवजी के, किसीको देवी के, किसीको राम के, कृष्ण के रूप सामने आ जायेंगे । प्रणाम करें । रुकें नहीं वहाँ । तो फिर जैसे दिखना बन्द होता है, वैसे ये अनुभूतियाँ भी शान्त होती हैं।

हिमालय में टिहरी और उत्तर काशी के बीच एक गुफा में ढाई–तीन महीने, बचपन में एकान्त में रही हूँ । वहाँ दूरदर्शन हुआ, दूरश्रवण हुआ । तरह-तरह के नाद सुनाई दिये, रंग-बिरंगे प्रकाश दिखे । सामने आप बैठे हैं तो मेरे और आपके बीच एक प्रकाश खड़ा हो जाय। कभी सुवर्णमय प्रकाश, कभी नीला; लेकिन चित्त में उसका आकर्षण नहीं, उसका महत्त्व नहीं । उसमें रस न हो तो ये सात्त्विक मनोरम उपाधियाँ, जो शक्ति रूप से प्रगट हुई थीं, वे अपने आप शान्त हो जाती हैं । यदि उसमें से गुज़र जाते हैं तो फिर न कोई घटना है, न कोई अनुभूति – ऐसे एक निर्विचार, निर्विकार आयाम में मनुष्य प्रतिष्ठित होता है । जिसको motionlessness कहा था – गतिमुक्त स्थिति, गतिमुक्त सत्ता ! यह एक जीवन का आयाम है । वहाँ चेतना प्रतिष्ठित होती है, संस्कारयुक्त चेतना 'अहं' नाम के केन्द्र को और 'मन' नाम के परिधि को लेकर देह में पड़ी है। वह नष्ट नहीं हुई है । आप पूछेंगे, आपका नाम क्या है ? तो कह दूँगी विमला । माँ- बाप का रखा हुआ नाम है । यह मेरा थोड़े ही है । इस देह में जो जीवन हैं वह अनामिक है । लेकिन माँ-बाप का दिया हुआ नाम विमल था, आज पूछियेगा तो कह दूँगी कि मेरा नाम विमल है । जीवन के कोई नाम होते हैं ? जीवन के कोई रूप होते हैं ? हैं तो सभी नाम उसके और सभी रूप भी उसके । नहीं तो वह नामातीत, रूपातीत, भावातीत, गुणातीत सत्ता हैं । अपना सत्त्व है, अपना सहज स्वयम्भू रूप है । उसमें स्थिर होती है संस्कारमुक्त चेतना । देह में एक पड़ी है संस्कारयुक्त चेतना । जिसमें हैं बुद्धि, मेधा, धृति, स्मृति। सब अपनी शक्तियों को लेकर बैठी हुई हैं । उसका नाश नहीं हुआ; लेकिन उससे दर्शन और स्पर्शन नहीं होता है । दर्शन और स्पर्शन अब इस शून्य से होता है, जहाँ आप नहीं हैं । नाम और रूप के साथ तदात्मता

साधा हुआ व्यक्तित्व वहाँ नहीं है । वहाँ तो है वैश्विक चेतना । वहाँ तो है वैश्विक प्रज्ञा ! और वह प्रज्ञा जो है, फिर वह इन्द्रियों के द्वारा देखती है । वह जो प्रज्ञा है, वह बुद्धि का उपयोग करती है और प्रतिसाद भी देती है ।

ज्ञानेश्वर ने बहुत मधुर लिखा है अपनी भावार्थ–दीपिका में –

"इन्द्रियांचा घरीं विषयांची व्यर्थ येरझार ।
आत्मबोधाचिया ओवरा पहुडला जो ॥"

इन्द्रियों के घर में विषयों का आवागमन बन्द हो गया, निरर्थक हो गया है । क्यों ? आत्मबोध की शय्या पर मन सो गया है । इसलिए इन्द्रियों के घर में विषयों का आवागमन होता है, चित्त को उसका पता ही नहीं ।

संस्कारमुक्त चेतना

एक है संस्कारयुक्त चेतना और एक है संस्कारमुक्त चेतना। The other - आपकी नहीं है वह । आनुवंशिक नहीं है वह, वह जीवन का धर्म है, जीवन का शील है । अणु-अणु में वह प्रज्ञा पड़ी है । याद है । मैंने पहले दिन कहा था – Life is not a blind force - It is a cosmic, universal, rather multiverse consciousness. ऐसे तो कितने ही ब्रह्माण्ड होंगे । हमें क्या पता है ? एक ही सौरमण्डल का पता चला, तो उसमें उलझ गये हैं । चौबीस सौर मण्डलों का उल्लेख तो आता ही है, कई ग्रन्थों में अड़तालीस हैं । हमें तो पिण्ड का ही पता नहीं है, तो ब्रह्माण्ड का कहाँ से हो ?

जो शून्य में - मौन में प्रतिष्ठित हो गये, वहाँ स्थिर हो गये, मौन जिनका स्वभाव हो गया है, वहाँ संस्कारमुक्त चेतना जागृत है । मन सोया हुआ है। जरूरत पड़ने पर वह संस्कारमुक्त चेतना या वैश्विक प्रज्ञा मन, बुद्धि और इन्द्रियों का उपयोग कर लेती है । कैसे कहूँ आपको ? दिखने के लिए बाहर से व्यक्ति है, अन्दर वहाँ शून्य है। यह पखावज, मृदंग को देखा है न ! अन्दर शून्य है और जैसे आप स्पर्श करेंगे, उस पर जैसा आप का आघात होगा, वैसा वह प्रतिसाद देगा, वैसे वह शून्य अन्दर पड़ा है । वहाँ मैं पृथक् हूँ जीवन से-यह भाव नहीं है । **'अयमात्मा ब्रह्म, सर्व खलु इदं ब्रह्म । अहं ब्रह्मास्मि । तत्त्वमसि ।'**

'अहं ब्रह्मास्मि' का बोध 'तत्त्वमसि' के बिना अधूरा है । अहं ब्रह्मास्मि को जिया ही नहीं जायेगा, जहाँ 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' और 'तत्त्वमसि' का बोध नहीं है । यह बोध होने से काम पूरा होता है। तो व्यक्ति के जीवन में क्रांति क्या

हुई ? वह मन का गुलाम नहीं, वह इन्द्रियों का गुलाम नहीं ।

"परवश जानि हँस्यो इन इन्द्रिन निजवश ह्वै न हँसैहौं ।

मन मधुपहिं, पन करि तुलसी रघुपति--पद–कमल बसैहौं ॥"

परवश नहीं है, इन्द्रियवश नहीं है, मन के वश भी नहीं है ऐसी एक संस्कारमुक्त, स्वाश्रयी, स्वाधीन, चेतना है। वह व्यक्ति नहीं कह सकेगा कि यह मेरी प्रज्ञा है। जहाँ तक 'मेरी' शब्द का उपयोग होगा, वहाँ तो वह संस्कारयुक्त चेतना ही है। वह वैखरी है, मध्यमा है, पश्यन्ती है या परा है। तो जहाँ तक संस्कार पहुँचे नहीं हैं, वाणी भी नहीं पहुँची, मन नहीं पहुँचा – ऐसी एक वैश्विक चेतना देह में भरपूर है। It sees through the eyes, not 'I'. उस व्यक्ति का अहंकार नहीं देखता, आनुवंशिक संस्कार या रागद्वेष नहीं देखते हैं। यह वैश्विक चेतना जो नित्यशुद्ध, नित्यप्रबुद्ध है – वही देखती है।

"ॐ नुमस्तां चैतन्यरूपाम् आद्यां विद्यां च धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।"

वह चेतना चैतन्यरूपिणी, आद्या विद्या है। The Causeless cause है – वेदों में जिसका प्रतिपादन हुआ है ऐसी वह उस व्यक्ति में जागृत है; इसलिए वह व्यक्ति हाड़मांस का शरीर होने पर भी आपके और मेरे जैसा व्यक्ति नहीं रह जाता। उसका केन्द्र नहीं है। भीतर चेतना में केन्द्र नहीं है। आपका और मेरा केन्द्र अन्दर है। There is no centre and therefore there is no circumference. जहाँ बिन्दु होगा, वहाँ परिधि है। वहाँ बिन्दु भी नहीं है, इसलिए परिधि भी नहीं है। इसको तुकाराम ने कहा –"आम्ही झालों सदेह ब्रह्म।" 'गोविन्द के गुण गाने से क्या हुआ ? 'तुकाराम से पूछा, उन्होंने कहा'–"क्या कहें ? वेद और ज्ञान का भार उनको ढोने दो। हम तो गोविन्द के गुण गाते गाते सदेह ब्रह्म हो गये"। रहने को छप्पर नहीं है तुकाराम के पास, लेकिन यह अवस्थान्तर हुआ हैं। अध्यात्म या ध्यान अवस्थांतर कर देता है। यह मानने की बात नहीं है। यह कल्पना का विलास नहीं है। यह वाणी का शृंगार भी नहीं है। यह यथार्थता है कि वहाँ हाड़मांस का शरीर और उसकी शरीर-धारणा के लिए आवश्यक देहभान रह जाता है; बाक़ी वैश्विक चेतना ही काम करती है। वे किसीके भी नहीं, और सबके हैं। तो ध्यान में बैठे बैठे "मैं" और "मेरा" भाव जो पहले तीक्ष्ण थे, वे मंद पड़े, फिर उनका लोप हो, फिर अनुभूति हो रही है – इस भान का लोप हो,

बाद में प्रतिकारमुक्त सहजता व्यक्ति के जीवन में आती है।

यहाँ पहुँचने की इच्छा हो, तो हम ध्यानयोग में आगे बढ़ें। मौन के अभ्यास में आगे बढ़ें और मुक्ति का भय लगता हो; तो यह जो जपतपादि साधन हैं, तन्त्र–मन्त्र के साधन हैं, उन साधनों का आश्रय लेकर व्यक्तिचेतना और वैयक्तिक जीवन को जितना शुद्ध बना सकते हैं उतना बनाने की कोशिश करें। जो क्रान्ति चाहते हैं – The inner psychological mutation चाहते हैं, चेतना का आयाम बदलना चाहते हैं, वे अध्यात्म के रास्ते से जायँ। फिर तो वही होगा –"मांही पज्या ते महासुख माणे।" तो भाई ! यह व्यक्तित्व-विसर्जन का क्षेत्र है। इसलिए – 'मनुष्याणां सहस्त्रेषु'– हजारों में एकाध को इच्छा होती है इस मार्ग पर आने की।

पाँच दिनों के शिविर में ध्यान के विषय में जो अनेक भ्रान्तियाँ है वे हटी हों – एकाग्रता या धारणा के अभ्यास को ध्यान मानते थे, उस भ्रम से मुक्त होने में मदद मिली हो, तो यह शिविर सार्थक है।

अध्यात्म में प्राप्ति नहीं, उपलब्धि

अध्यात्म प्राप्ति का विषय नहीं, उपलब्धि का विषय है। आत्मा या परमात्मा की प्राप्ति नहीं, उपलब्धि होती है। जो स्वरूप है निज रूप, उसकी प्राप्ति कैसे ? "अप्राप्तस्य प्रापणम्" होता है। अपना सहज स्वयम्भू जो स्वरूप हैं – नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त – उसके प्रगटीकरण के लिए, रास्ते में जितने विक्षेप और प्रत्यवाय हैं, उनको हटाने का यह काम तो प्राप्ति का विषय नहीं, यह समझने पर ही, मैं समझती हूँ कि आधे लोगों की जो रुचि है ध्यान में, वह निकल जायगी । यह अच्छा होगा, शुभ होगा। वे साधक या जिज्ञासु छलनी में छन जायेंगे। जो धर्म के रास्ते से जाते हैं उन्हें कुछ चाहिए। वह अनुभूति चाहिए या तो कुछ सहारा चाहिए या शक्ति की जागृति चाहिए। हमें तो अहं को पुष्ट बनाना हैं न ! दूसरों से कैसे पृथक् हैं, यह बतलाने के लिए अव्यक्त साधन जुटाने हैं। हम पृथक्तावादी हैं और यहाँ तो सर्वात्मवाद है; इसलिए घर जाकर हम अपने को अच्छी तरह जाँचें कि आपका हेतु क्या है ? प्रयोजन का स्वरूप समझ में आयेगा, तो एक प्रकार की नम्रता आयेगी। आधार चाहिए, सहारा चाहिए, यह गलत नहीं है; लेकिन 'मुझे सहारा चाहिए, इसलिए मेरी रुचि के लायक सहारा मैंने ढूँढ़ लिया है' इतना कहने की नम्रता आ जायेगी। उसको गलती से अध्यात्म

न समझें। यह तो निरपेक्षता का रास्ता है। यह तो स्वाधीनता का रास्ता है। यह तो स्वाश्रयी जीवन का, संन्यास का रास्ता है। आन्तरिक संन्यास की यहाँ बात है। बाक़ी तो प्रारब्ध से देह को जहाँ प्रभु को रखना है वहाँ रखे। जहाँ देह का प्रारब्ध होगा, वह वहाँ रहेगा; लेकिन कम-से-कम भ्रम से छूटें।

ध्यान करना नहीं है, होता है

कहा जाता है, 'हम ध्यान करते हैं'। अब पता चलेगा कि ध्यान कोई करने की वस्तु नहीं है। ध्यान होने की अवस्था है। ध्यान निज रूप में स्थिर होने की बात है। शारीरिक या मानसिक क्रिया नहीं है। ध्यान पुरुषार्थ का विषय नहीं, प्रपत्ति का महाकाव्य है। वह प्रपत्ति किसी व्यक्ति के सामने नहीं है। व्यक्त विग्रह के सामने भी नहीं है। यहाँ तो मुश्किल है। व्यक्ति हो तो दौड़ें उसके पास और पाँच रुपये, पाँच हजार रुपये, जो हो दे दिया, समर्पण कर दिया। खुश हो गया अहंकार कि मैंने समर्पण किया।

अरे ! तू समर्पण करेगा रे ! तेरी ताक़त है समर्पण करने की? समर्पण तो हो जाता है। प्रभु का अनुग्रह हो, तो वह हो ही जाता है। वह हो तो सरलता और ऋजुता पैदा होती है अपने भीतर। समर्पण अहंकार की क्रिया नहीं है। वह दृढ़ निश्चय का कर्म नहीं है। वह तो हो जानेवाली एक घटना है; जैसे प्रेम हो जानेवाली घटना है। वह किया नहीं जाता। प्रेम में हुआ जाता है, प्रेम जिया जाता है। लेकिन प्रेम किया कैसे जाय ? तो व्यक्त के सामने और व्यक्त के साथ ''मैंने समर्पण किया'' यह भाव और भान जागृत रखने की गुंजाइश है। वहाँ तो मनुष्य जाता है। यहाँ अव्यक्त, सर्वात्मिका, जो जीवन की सत्ता है - जीवनप्रिय, जीवनप्रभु सर्वव्याप्त हैं उनकी उपस्थिति का भान जागृत करके सम्पूर्ण जीवन, एक नयी वृत्ति और नयी दृष्टि से जीने का काम है।

क्षण में समग्र जीने की भूमिका

आप कहेंगे यह सब क्या हुआ ? इसके परिणाम-स्वरूप क्या होगा ? परिणाम-स्वरूप यह होगा कि भाई, ऐसे व्यक्ति को कल की चिन्ता नहीं है। वह आज में जीता है। सामने जीवन जो प्रसंग लाये, उन प्रसंगों में वह व्यक्ति उन्मुक्त चित्त से सारी शक्तियों को लगाकर अपने आपको उँडेलकर उस क्षण को जी जाता है। उसको क्षण की मुट्ठी में छिपे हुए अनन्त के दर्शन होते हैं। उसको, विशिष्ट व्यक्ति के रूप में समग्र मानवजाति सामने खड़ी

है, यह बोध रहता है। इसलिए उसका विशिष्ट के साथ व्यवहार समग्रता के संदर्भ में होता है। क्षण में होनेवाला, क्षण के साथ होनेवाला व्यवहार शाश्वती के अवधान के आलोक में होता है।

"The particular with which he gets related is an organic part of the totality for him, the moment is the eternity for him." इसलिए आज में, अभी में, अधुना, अद्य, वर्तमान में इतना समरस होकर जीता है और जो हुआ उसका परिणाम दोनों हाथ पसारकर स्वीकार कर लेता है। वह सुख हो या दुःख हो; यदि सुख को प्रभु की कृपा या दुःख को अभिशाप मानें, तो जीवन की समग्रता को खण्डित कर दिया। वह व्यक्ति समग्रता–समग्र शक्ति को उँडेलकर कर्म करता है और परिणाम जो आया, उसको प्रसाद समझकर ग्रहण भी कर लेता है। इसलिए वह कल की चिन्ता नहीं करता और हम आज जी नहीं पाते; क्योंकि या तो भूतकाल की स्मृति है या तो आनेवाले कल की चिन्ता है। उसको तो कर्म में ही कृतकृत्यता है।

अरे ! जीने का अवसर मिले, इसके जैसा पुण्य किसका ? "To be alive is the benediction" जीवित रहने का अवसर मिले यही प्रभु का अनुग्रह है । मनुष्य की देह मिली, यही प्रभु का अनुग्रह है और अलग अनुग्रह माँगने की ज़रूरत किसको ? तो उसको जीवन जीने में परिपूर्ति, कर्म करने में कृत-कृत्यता मिलती है । इसलिए **''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन''** – फल की और नज़र ही नहीं जाती उसकी । जो होना है सो हो; क्योंकि कर्म करने में आनंद है । कर्म निरानंद हो और कर्म से स्वतन्त्र फल की अपेक्षा रहे, तो मनुष्य अपनी सारी शक्तियाँ कर्म में उँडेल नहीं सकता । समग्र सावधानता को लेकर सानन्द कर्म होता हैं । कर्मसरिता जीवन में बहती है । कल की चिन्ता नहीं । तो यह कल की चिन्ता और कल के भय से व्यग्र हमारे चित्त, जो हमें जीने नहीं देते हैं, वे फिर जीने देंगे ।

सभी कर्मों में प्रेम की आर्द्रता

मनुष्य तब जीने लगेगा । आज हम जीते नहीं है । रातों के पीछे दिनों को घसीटते हुए ले जाते हैं या दिनों के पीछे रातों को घसीटते ले जाते हैं । पल-पल की पवित्रता, प्रत्येक सम्बन्ध को मुक्तिदायिनी बनाने की शक्ति मनुष्य के ध्यान में तब आने लगती है।

प्रभु की सत्ता में कर्तुम्, अकर्तुम्, अन्यथा कर्तुम् शक्ति होती है। जो व्यक्ति इस प्रकार अपना सर्वस्व यानी संस्कार, ज्ञान, बुद्धि, कर्ता–भोक्ता भाव-द्रष्टाभाव – यह जो उसका आन्तरिक ऐश्वर्य है वह शून्य की वेदी पर समर्पण करके बन जाता हैं विराट् का, विश्व का । उसको प्रभु सँभालते हैं । उसके जीवन को वे ही चलाते हैं और ऐसे व्यक्ति जहाँ जायेंगे, वहाँ भेदों की दीवारें ढह जाती हैं । एकता का गान गूँज उठता है और दृष्टि से अहंमुक्त निर्दोषता टपकती है । उसके व्यवहार में स्नेह की स्निग्धता बहती रहती है । आख़िर मनुष्य को और समाज को यही चाहिए न ? आज हम इतने स्वकेन्द्रित हैं, इतने असन्तुलित हैं कि अपने मन के और प्रतिक्रियाओं के दायरे से बाहर निकल नहीं पाते । एक-दूसरे के साथ जी नहीं पाते । यही समस्या है न !

आज मानवीय मूल्यों का जो ह्रास या चरित्र का पतन हुआ, यह स्वकेन्द्रितता की परमावधि से हुआ है । इसलिए इस केन्द्र से निकलने का और दूसरे आयाम में – another dimension of consciousness में प्रवेश करने का यह जो एक मार्ग है, वह समाज के लिए उपकारक और व्यक्ति के लिए उद्धारक है, ऐसी मेरी श्रद्धा है । अध्यात्म को जीवन-अभिमुख बनाना होगा और समाजसेवा करनेवाले के जीवन में अध्यात्म का अधिष्ठान लाना होगा; क्योंकि जब तक जीवन में अध्यात्म का अधिष्ठान नहीं होगा, तब तक मानवीय मूल्य टिक नहीं सकेंगे । '*अयमात्मा ब्रह्म*' का प्रत्यय नहीं है तब तक सत्य, धर्म और न्याय की प्रतिष्ठा मनुष्य के चित्त में होती ही नहीं है ।

इसलिए मैं निकल पड़ी हूँ । जैसा मुझे सूझता है वैसी बातें बोलती जाती हूँ । वह भाई धार्मिकलालजी अगर विद्वान नहीं हैं, तो मैं भी कहाँ की विद्वान हूँ ? लेकिन अपना जीवन जो अपने में जीये हैं, जो समझे हैं, बाँटते चलते हैं । '*वाचि वीर्यं ब्राह्मणानाम्*' – अपने पास दूसरा है भी क्या, वाणी के सिवा ? लेकिन प्रभु अपना नियम तोड़कर अपने जैसों की मदद करते हैं । इतनी बात मैं आपको बतलाती हूँ । जो अपने मिट जाते हैं और प्रभु के बनते हैं, जो अहं को मिटा देते हैं और विराट् को जगा देते हैं – अपना नियम तोड़कर प्रभु उनको सम्हालते हैं ।

प्रबल प्रेम के पाले पड़ कर
प्रभु को नियम बदलते देखा ।
भगत प्रेम के पाले पड़ कर

हरि को नियम बदलते देखा ॥ प्रबल... ॥
जिसकी केवल कृपादृष्टि से
सकल विश्व को पलते देखा ।
उसको गोकुल में गोरस पर
सौ सौ बार मचलते देखा ॥ प्रबल... ॥
जिसका ध्यान विरंचि शंभु
सनकादिक से न सँभलते देखा ।
उसको ग्वाल-सखा-मण्डल में
हँस-हँस गेंद उछलते देखा ॥ प्रबल... ॥
जिसके चरणकमल कमला के
करतल से न निकलते देखा ।
उसको व्रज की कुंज गलिन में
कंटक पथ पर चलते देखा ॥ प्रबल... ॥
जिसके भृकुटि भंग के भय से
सागर सप्त उबलते देखा ।
उसको जशोदा माँ के भय से
अश्रु बिन्दु दृग ढलते देखा ॥ प्रबल... ॥

विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय

मित्रो ! यह भारतवर्ष है । चाहे जितना पतन आज के भारतीयों का हुआ हो; वेदों, उपनिषदों, भागवतों, श्रीमद्भगवद्गीता का यहाँ जन्म हुआ है – इस तथ्य को कोई मिटा नहीं सकेगा । अमावस की घोर रात उतर आई है इस देश पर और मुझे आनेवाला प्रभात दिखाई दे रहा है। आनेवाला विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय इस देश की धरती पर होकर रहेगा।

हमसे होगा या नहीं – कौन जानता है ? लेकिन 'हम' महत्त्व के नहीं। यह होनेवाला है, अवश्यंभावी है; क्योंकि संसार ने बाक़ी सब शक्तियाँ देख ली हैं। विज्ञान जीवन को दिशा नहीं दे सकता – यह देख लिया है। अध्यात्म के बिना दिशादर्शन करने की शक्ति और किसी में नहीं है, इस श्रद्धा के साथ ऐसे शिविर चलाते हैं। जिसकी मर्जी हो, प्रभु का नाम ले; नाचे, गाये, कूदे। जाना एक ही ओर है अहं के कारागार से मुक्त हों। या तो 'तू ही', 'तू ही' कहें। या 'मैं नही हूँ' और 'जीवन है' इस प्रत्यय में चले जायँ । 'इदमस्ति' के प्रत्यय में चला जायँ।

प्रभु इस प्रकार की शक्ति हम सबको दे।

(४-२-'८१ प्रातः)

चौथी प्रश्नोत्तरी

प्रश्न – महापुरुषों के स्पर्श से सामान्य मनुष्य को भी समाधि लग जाती है ऐसा पढ़ने में, सुनने में आया है। इसका रहस्य क्या है? इस प्रकार की समाधि और ध्यान तथा गीता की समाधि में क्या साम्य और अन्तर किना ?

उत्तर – महापुरुषों के स्पर्श से सबको तो समाधि लगती नहीं है। ठाकुर रामकृष्ण परमहंस ने बारह शिष्यों में से नरेन्द्र दत्त नाम के युवक को स्पर्श किया; चाहे छाती पर हाथ रखा हो, चाहे उसकी जंघा पर अपना पाँव रखा हो, स्पर्श किया और उसका अवस्थांतर हुआ; लेकिन जो लोग आगे चलकर ब्रह्मानंदी बने – राखाल, लाटू, शशी, काली कितने ही उनके दूसरे शिष्य थे, अभय उनका अपना भतीजा; उनमें से किसीको भी समाधि नहीं लगती थी। यानी It takes two to happen it. जिसको स्पर्श करते है उस व्यक्ति की अवस्था और स्पर्श करनेवाले की अवस्था, इन दोनों का मिलन होता है, उस क्षण घटना घटित होती है। यहाँ दो की अपेक्षा है।

सबके सबको तो समाधि लगती नहीं है। यह एक चीज़ या एक तथ्य हम ध्यान में रखें। नरेन्द्र दत्त की उत्कटता इतनी कि ईश्वर को देखे बिना चैन नहीं। प्राण व्याकुल थे। उनके जन्म की कथा भी विशेष कथा थी। उनकी उन्मुखता थी। श्रद्धा तो मैं नहीं कहूँगी; लेकिन उन्मुखता थी उनकी। उनको तो पता ही नहीं चलता था कि रामकृष्ण परमहंस देव सचमुच साक्षात्कारी विभूति हैं या कोई पागल व्यक्ति हैं। इसका निर्णय करने में कई महीने लग गये। बड़े विचक्षण थे नरेन्द्र।

अब दूसरी बात, कि समाधि जो लगी विवेकानंद को, उसमें सम्पूर्ण विकास हो गया या सम्पूर्ण परिवर्तन आ गया, ऐसा नहीं। समाधि एक दशा है, निर्विकल्प समाधि की भी एक दशा है, Dimension है। इसकी झलक उनको मिली और बाद में काशीपुर के बगीचे में, शायद उनके देहावसान के कुछ दिन पहले या कुछ पहले, रामकृष्णदेव ने नरेन्द्र से कहा कि यह चाबी जो है, माँने अपने हाथ में रखी है। तू आया है माँ का काम करने,

तो इसकी अनुभूति बार-बार तुझे होनेवाली नहीं है।

अब देखिए, इन शब्दों में महापुरुषों के संकेत होते हैं। रामकृष्ण के लिए समाधि अवस्था सहज हो गई थी और प्रयत्नपूर्वक अर्धसमाधि में वे रहते थे, ताकि बाह्य व्यवहार कुछ हो सके, बातें हो सके। और विवेकानंद के लिए समाधि की वह अनुभूति हुई, उसके बाद ई.स. १८८९ में, जब काश्मीर गये तो वहाँ क्षीर भवानी के मन्दिर में उनको फिर से एक बार उस दशा का स्पर्श हुआ। यानी वह क़ायम **'यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'** – उस प्रकार की दशा में, उस अवस्था में बाद में रहे हैं सदा सर्वदा; ऐसा इतिहास नहीं है। जो लिखा गया है उनके विषय में, उसके आधार पर बोल रही हूँ। लेकिन उस अवस्था का स्पर्श होने मात्र से भी जो परिवर्तन आते हैं चित्त में, बुद्धि में, व्यवहार में, वे तो स्वामीजी में आ चुके थे।

तो महापुरुषों के स्पर्श से कभी शक्तियाँ जागृत होती भी हैं। शक्ति जागृत होकर उस शक्ति का जो विनियोग मानव सेवा के लिए, जगत् के उद्धार के लिए होना होता है, वह जीवन करा लेता है; और मैं जिस समाधि, ध्यान की बात कर रही हूँ; वह है चेतना का एक आयाम। एक नया Dimension है, एक परिमाण है, जिसमें जाने के बाद वापिस आना नहीं है।

इसमें दो फ़र्क़ हैं। एक तो यह growth का, समग्र उत्थान का, आरोहण का परिणाम है। वह कृत्रिम रीति से जागृत की हुई अवस्था नहीं है। By raping the psyche वह किया हुआ नहीं है। तो एक हैं growth और उसका परिणाम; और दूसरा है आकस्मिक, किसी प्रयोजन से जगाई हुई शक्ति और उसकी अनुभूति।

प्रश्न – जे. कृष्णमूर्ति से आपकी जो मुलाकातें हुई हैं, उनमें फलदायी और रोमांचक कौन-सी थी? कृपया सुनायें।

उत्तर – पता नहीं, पूछनेवाले ने क्यों पूछा कि जे. कृष्णामूर्ति के साथ की कोई मुलाकात रोमांचकारी थी। क्या मिलेगा आपको सुनकर ? इसका आत्मजिज्ञासा, ब्रह्म-जिज्ञासा से क्या सम्बन्ध ?

मान लीजिए, दो व्यक्तियों के बीच मुलाकात हो गई। तो उसको

जानकर क्या मिलेगा? लेकिन आपने पूछा है और जब यहाँ आकर बैठती हूँ, तो ''वक्ता–श्रोता तु भगवान् वासुदेव इति मे मतिः''। प्रश्न का उत्तर देना ज़रूरी है।

उनके स्पर्श से कान की बीमारी तीन दिन में निर्मूल हो गई, और चौदह महीनों से जो total deafness थी, सम्पूर्ण बधिरता थी, वह चली गई। Auditory test कराने के बाद जब देखा गया कि हाँ, वास्तविक श्रवण-शक्ति लौटी है और व्याधि का निराकरण हुआ है, तो उस महापुरुष ने बहुत ही सरलता से मुझे कहा – "Don't be stupid enough to think that I have done something to you" – ऐसी नादानी न करना कि मैंने कुछ इसमें किया है। तुमको किया है, तुम्हारे साथ किया है, मैंने किया है, यह नादानी न करना। "It has happend. यह हो गया है। मेरी माँ कहा करती थी कि तेरे हाथों में यह शक्ति है। यह कभी काम करती है और कभी काम नहीं भी करती है।''

उनकी निखालसता, उनकी विनम्रता की पराकाष्ठा! हुआ था; वे चाहे निमित्त बने थे या जो भी हो; लेकिन वे आग्रह कर रहे थे। मेरे चित्त पर भार था कि इन्होंने वे उपकार किये हैं और मैं तो उनके शिष्य या भक्तमण्डली में नहीं हूँ! मैं किसी संस्था की सदस्य इस जीवन में बनी नहीं। कभी बनी नहीं, बनना भी नहीं था। तो ऋण में से कैसे मुक्त होऊँगी? इस प्रकार का स्वकेन्द्रित और अहंभावयुक्त भाव मेरे चित्त में था, इसे वे समझ गये थे। उन्होंने कहा कि यह पागलपन न करना, यह नादानी न करना, मैंने कुछ भी नहीं किया है। It simply has happend!

लन्दन में एक दिन मुझे बुलाया था मुलाकात पर। १९६१ की बात है। मैं उनसे मिलने गई, दो घण्टे का प्रवास करके।

आप लोग जे. कृष्णजी को केवल एक वक्ता के रूप में जानते है। मैं जब गई तो वे रसोईघर में बर्तन साफ़ कर रहे थे। कृष्णजी का यह जीवन बहुत कम लोग जानते होंगे – अपना कमरा साफ़ करते हुए, अपना विस्तर लगाते हुए जिन लोगों ने उनको देखा नहीं, वे लोग समझ नहीं सकेंगे मेरी इस बात को।

उनकी जो यजमान महिला थी, वह अत्यन्त वृद्ध थी। वे कहने लगे, ''लंच के बाद मैंने उनको भेज दिया है। मैं बर्तन साफ़ कर रहा हूँ।'' कतई भूल गये थे कि उन्होंने किसीको इन्टरव्यू का समय दिया है। कहने लगे, "By God, did I give you time now?" मैंने कहा, ''जी, आपने मुझे यह समय दिया था। यदि आप कहें तो वापस चली जाऊँ।'' वे बोले, ''नहीं, नहीं, किचन में इन्टरव्यू हो, तो आपको कोई आपत्ति तो नहीं है न?'' मैंने कहा, ''आपत्ति तो नहीं हो सकती, एक ही शर्त है कि आप बर्तन साफ़ कर रहे हैं, धो रहे हैं, मुझे पोंछने की अनुमति दीजिए । फिर इन्टरव्यू चले।'' तो कृष्णजी बर्तन धोते थे और मैं पोंछकर रखती थी। इन्टरव्यू चला।

फिर कहने लगे - ''You Indians, you are notorious for drinking tea. तुम भारतीय लोग चाय के बड़े शौक़ीन होते हो। चाय पीओगी शायद''। तो मैंने कहा, ''जी, हाँ।''

खुद पीते नहीं है और उन्होंने बड़े प्रेम से चाय बना दी और मैंने पी। लोग उनको जो हद पार कर एक अति मानव की कोटि में रखते हैं, वैसा उनके साथ मेरा व्यवहार रहा नहीं। अत्यन्त परिमार्जित और परिष्कृत मानवता का एक उज्जवल उदाहरण उनके रूप में देखने को मिला। ऐसा ही एक परिमार्जित मानवता का उज्जवल उदाहरण विनोबाजी के रूप में मैंने देखा है।

खैर! तो कृष्णजी को रसोई करते देखा है। भात और पालक की सब्ज़ी उनकी बड़ी प्रिय चीज़ है। स्विट्झरलैंड में जब उनको मिलने मैं गई थी, एक दिन लंच के वक्त मुझे बुलाया, तो खुद अपने हाथों पालक की सब्ज़ी बनाई और भात बनाया और हम लोगों ने खाया।

ऐसी कई घटनाएँ हैं । मुझे असामान्यों की असामान्यता आकर्षित नहीं करती है, लेकिन असामान्यता के बावजूद उनमें जो सामान्यता रहती है, वह मुझे आनन्दित और आकर्षित करती है। असामान्यता उपलब्ध होने के बाद सामान्यता क़ायम रहने देने की विनम्रता जिनमें हैं वे मेरी दृष्टि से सच्चे महापुरुष हैं। ख़ैर ! यह सब कहने जायेंगे तो और दो घण्टे बैठना पड़ेगा। इतनी सारी घटनाएँ हैं, किसी एक घटना को मैं दूसरी घटना से

कम रोमांचक नहीं मानती। चलें, अब इस विषय को छोड़ दें।

प्रश्न – ध्यानावस्था और समाधि-अवस्था में क्या अन्तर है? क्या ऐसा कह सकते हैं कि ध्यान समाधि का प्रवेशद्वार है?

उत्तर – जब निर्विचार और निर्विकार अवस्था सहज हो जाय, तब ऐसा नहीं कि निर्विकार और निर्विचार अवस्था एख घण्टा ही रहे, दो घण्टे ही रहे । फिर व्यवहार में उतर आये तो उस निर्विकार, निर्विचार अवस्था में व्यवहार नहीं हो पाता है। पहले मैंने दो अवस्थाओं का उल्लेख किया था – संस्कारयुक्त और संस्कारमुक्त। संस्कारमुक्त दशा में बैठे हैं तब अलग अवस्था है और जहाँ कोई काम या कोई व्यक्ति खड़ी हो गई – वहाँ चेतना का आयाम बदल गया और वापस आ गये चेतनामुक्त जो निज दशा है उस पर; यह एक बात है। This is one phase. दूसरा यह कि यह निर्विचार और निर्विकार अवस्था सदासर्वदा रहे। व्यक्ति सामने है, आँख देख रही है और फिर भी –आँख देख रही है या तो शून्य को या उस हाड़मांस के पुतले में समाई हुई जो चिन्मय सत्ता है उसके नूर को। उस व्यक्ति के नाम, रूप, गुण, दोष कुछ भी नज़र नहीं आ रहे हैं, दिखती है केवल वह आत्मसत्ता। बोल रहे हैं, प्रयोजन के अनुसार जो करना है उस परिस्थिति को प्रतिसाद दे रहे हैं; लेकिन उसमें रागद्वेष नहीं उठता है। ऐसी भी एक अवस्था होती है। निर्विचार और निर्विकार अवस्था सहज हो जाय, समाधिस्थ रहकर व्यवहार हो सके यानी समाधि का आयाम व्यवहृत हो जाय।

ध्यान कब कहेंगे ? जब तक वह चौबीसों घण्टे चेतना का सामान्य सहज आयाम बनकर रहता नहीं है । कुछ समय रहता है, कुछ समय नहीं रहता है तब तक नहीं। ध्यान जब सहज हो जाय, चेतना का शील हो जाय, व्यक्ति उसमें से बाहर निकलता ही नहीं है। एकान्त में, लोकान्त में; रात में, दिन में; सुख में, दुख में एक-सी जब उसकी दशा रहती है और वही उसकी सहज दशा दशेन्द्रियों से प्रकट होती है; तो वह समाधि की दशा है ऐसा मैं नहीं कहूँगी। वह है कि नहीं यह तो आप या मैं कैसे जानेंगे ? मेरा देखना जहाँ तक गया है, वहाँ तक की बात करती हूँ कि मैं ऐसा अर्थ उसका लगाती हूँ। ध्यान समाधि के आयाम का प्रवेशद्वार है, ऐसा

कहने में कोई दोष नहीं।

प्रश्न – दिन में विचार को देखते रहने से बहुत ही कम विचार आते हैं; लेकिन रात को उन विचारों का Verbalisation इतना बढ़ जाता है कि क्या चलता है, यह समझ में नहीं आता और निद्रा भी नहीं आती। तो प्रगाढ़ निद्रा कैसे आये? कितने घण्टे आये और विचार कैसे बन्द हों – इन पर कृपया प्रकाश डालें !

उत्तर – अब देखिए, यह मस्तिष्क जो है, वह पूरे शरीर के साथ जुड़ा है। A cerebral organ is interwoven with the rest of the body. मानवीय शरीर, मानवीय जीवन बड़ा जटिल है । उसकी जटिलता का जो लावण्य है वह अवर्णनीय है। The beauty of its complexity is beyond words. बहुत ही जटिल है और यहाँ जो कुछ है शरीर में, एक-दूसरे के साथ ऐसा जुड़ा हुआ है कि उसको अलग नहीं किया जा सकता।

देखने में यह आया है कि जिसकी पाचनशक्ति और अन्नपचन करनेवाले जितने भी अवयव हैं, वे सामान्य स्थिति में नहीं हैं। या तो क़ब्ज़ियत रहती है। नहीं तो कुछ खाया है और रसाजीर्ण हो जाता है। कच्चा आम बनता है। आमांश रहता है तो डायरिया या डिसेन्ट्री जल्दी–जल्दी होती है। पेट की बीमारियाँ तो अनेक प्रकार की हैं। अग्निमांद्य से लेकर पाचनशक्ति में विकृतियाँ या असंतुलन आजकल तो सामान्य हैं।

तो जहाँ पाचनशक्ति में कोई-न-कोई असंतुलन है या अग्निमांद्य है, वहाँ उनका परिणाम Brain पर होता है और जैसे कोई फिल्म की रील हो, वह एकदम से खुल जाती है; रुकती नहीं है, वैसे रात को जहाँ वे लेटे हैं, वहाँ विचार या जो कुछ घटनाएँ घटित हुई हैं वे, जो सुना है वह, जो सोचा है वह, जो बोल नहीं पाये वह सबका सब उनके सामने शब्दांकन या चित्र के रूप में आता है। पेट का और मगज का बड़ा सम्बन्ध है। The irresistible verbalisation of thoughts can be a pathological condition instead of psychological weakness. (विचारों का शब्दांकित होते जाना, रोक न पाना, यह मानसिक विकृति के बजाय शारीरिक कमज़ोरी हो सकती है) यह मुझे कहना है। यदि शरीर

में कमज़ोरी हो या असंतुलन हो वहाँ, तो रात को बहुत सारे विचार, स्वप्न आते हैं। सपने रुकते ही नहीं हैं। दवाएँ करो, Psychiatrist के पास जाओ या Psychoanalyst के पास जाओ, लेकिन स्वप्न ही स्वप्न। निद्रा थोड़ी, स्वप्न ज्यादा। ऐसी एक दशा होती है मनुष्य की और ऐसे दुनिया के चालीस देशों के भ्रमण में सैकड़ों नमूने देखने में आये।

जिनको ऐसी तकलीफ़ होती है, उस व्यक्ति को पहले ज़रा अपने स्वास्थ्य को देख लेना चाहिए। किसीसे जाँच करवा लेनी चाहिए। कोई अच्छे आयुर्वेदवेत्ता हों तो नाड़ी-परीक्षा करवा लें। यदि आप लोगों को आयुर्वेद में श्रद्धा नहीं है, तो जिस Pathy में आप मानते हैं; उससे परीक्षा होनी चाहिए और यदि पेट में इतनी तकलीफ़ है, तो सूर्यास्त के बाद का आहार एकदम बन्द कर देना चाहिए। प्रवाही पदार्थ लेने चाहिए। कोई भी भारी आहार उस व्यक्ति को नहीं लेना चाहिए।

आप प्रयोग करके देखें। उस व्यक्ति के आहार में यदि ज्ञानतन्तुओं को शक्ति देनेवाला शक्तिवर्धक आहार होगा और Fat या चर्बीवाला आहार कम होगा। अगर ऐसा होगा तो डेढ़-दो महीने में फ़र्क़ पड़ने लगेगा। रात्रिभोजन वर्ज्य करेंगे तो भी उनकी निद्रा में फ़र्क़ पड़ने लगेगा।

अब व्यक्ति को कितनी निद्रा आनी चाहिए? यह तो व्यक्ति की आयु, व्यक्ति की कफ, पित्त या वात की कैसी प्रकृति है यह देखना पड़ेगा। उसके व्यवसाय का स्वरूप देखना पड़ेगा और कहाँ रहते हैं वह भी देखना पड़ेगा। तब किसको कितनी निद्रा आनी चाहिए, इसका कुछ गणित लगा सकेंगे। ये व्यक्ति-सापेक्ष चीजें हैं। अगर बम्बई में रहते हैं तो वहाँ हवा में सीलन – भीगापन है; इसलिए नींद ज्यादा चाहिए। आप सूखी हवा में चले जाइए – राजस्थान में, वह आबू हो या बीकानेर हो, जयपुर हो, अजमेर हो – वहाँ निद्रा कम चाहिए; क्योंकि वहाँ की हवा में शक्ति क्षीण नहीं होती है, जो बम्बई या कलकत्ते की हवा में क्षीण होती है। आप छः घण्टे – सात घण्टे बिस्तर में पड़े रहें, तो भी सुबह में ताज़गी नहीं लगती। इसलिए आपने पूछा कितने घण्टे निद्रा ! तो इसका आपको universally applicable जवाब दे नहीं पाऊँगी। इसका मैं व्यक्ति-सापेक्ष ही जवाब दे सकती हूँ। हाँ, इतना ज़रूर है कि भारत जैसे देश में छः घण्टे की निद्रा

शरीर-स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य है ऐसा मैं मानती हूँ और यदि उत्तर भारत में हों, तो जाड़े की मौसम में सात या आठ घण्टे की निद्रा भी शरीर के लिए आवश्यक हो सकती है। सिमला में हैं, डलहाउजी में हैं, पाँच हजार फीट से ऊपर रहते हैं, तो हो सकता है कि अधिक निद्रा चाहिए।

आपने पूछा है कि निद्रा आने के लिए क्या करें? ये दो उपाय तो बतला दिये। तीसरा एक उपाय है। रात की निद्रा से पहले, यदि आहार सूर्यास्त से पहले हो गया हो तो कुनकुने पानी से या ठण्डे पानी से – जैसा अनुकूल हो – sponging कर लेना चाहिए। यदि स्नान कर सकते हैं तो बहुत अच्छा। अगर स्नान नहीं कर सकते हैं तो sponging चलेगा। पाँव के तलवे जो हैं वे ठण्डे पानी में भीगोकर उसको काफ़ी घिसते रहें – पाँच मिनट, दस मिनट, आपको निद्रा आने लगेगी।

पाँव के तलवों में सारे शरीर का नक्शा है। पाँव के तलवों को ठण्डे पानी से आप घिसते हैं, मैं घी वगैरह की बात नहीं कर रही हूँ और गाय के घी की बात कहाँ करूँ; जहाँ घी आँख से देखने को नहीं मिलता है; मैं सामान्य मध्यम वर्ग की व्यक्ति हूँ, इसलिए जो सामान्य मध्यम वर्ग के लिए अनुकूल उपाय होंगे उतने बतलाती हूँ। नहीं तो फिर लोग बातें करेंगे; गाय के घी की, बादाम के तेल की और पता नहीं क्या क्या बातें करेंगे? लेकिन सर्वसुलभ जो है वह एक है और वह है मिट्टी की पट्टी। मिट्टी की पट्टी रख सकते हैं पेट पर तो रखें। हो सकता है कि शारीरिक दोष के कारण निद्रा नहीं आती है और ये विचार बनते चले जाते हैं, तो उस पर नियमन-नियंत्रण आ जायेगा।

दूसरा उपाय यह है कि दिन में जब कोई काम करते हैं, तो कोई भी काम चित्त को व्यग्र रखकर न करें। जब काम करते हैं तब पलभर का सम्बन्ध हो, घड़ीभर का काम हो; लेकिन उसमें पूरा का पूरा अवधान देकर – Live so thoroughly and so totally every minute and in every movement that your mind does not turn back to it any more. पलभर में और प्रत्येक सम्बन्ध में अपनी समग्रता को उँडेल कर जी लें। ताकि मन फिर उसी पल की ओर लौट न जावे। सुख हो और ओठों पर स्मित आये अथवा दुःख हो और आँखों में

आँसू आयें तो आने दें। जीवन जितना स्मित में है, उतना आँसुओं में भी है। वेदना, व्यथा, पीड़ा का अनुभव न होता, तो मैं समझती हूँ मनुष्य-हृदय बड़ा कृपण और संकीर्ण बन जाता। जिसके हृदय को मृत्यु की और वियोग की वेदना ने बिंधा नहीं; वह आदमी भी क्या है?

सुख जीवन को जितना ऐश्वर्य नहीं दे पाता, उतना दुःख दे जाता है; वेदना, व्यथा, पीड़ा दे जाती है। लेकिन हमें दुःख, वेदना, पीड़ा का स्पर्श भी नहीं चाहिए; इसलिए उससे बचाव के Preventive तरीक़े खोजते हुए हम चले जाते हैं। तो संवेदनशीलता बढ़ती नहीं है हमारी। व्यक्ति सुख-दुःख से पूरी तरह गुज़रे, ताकि कुछ भी अधूरा न छूटे, कुछ भी उपेक्षित न रहे, कुछ भी तिरस्कृत न रहे– तो हो सकता है कि जिस घटना में से आप गये, जिस अनुभव में से आप गये; वह वहाँ के वहाँ इस क़दर पूरा हो गया कि you died with it and you are born again – उस क्षण में आप उसको इस ढंग से जी गये कि फिर से उसको याद करने की ज़रूरत मन को महसूस न हो। 'मैं याद नहीं करूँगा' कहने से काम नहीं चलेगा। तो व्यग्र होकर – अनवधान के अन्दर कुछ कार्य हम न करें। आधे दिल से कुछ न करें। जो करें सो पूरे दिल से करें; तो यह रात को आनेवाले विचारों का और यह शब्दांकित होने का जो क्रम है, वह शान्त हो सकता है; क्योंकि दिन में जो पूरी तरह से जिया नहीं जाता, वह भी रात को शब्द का रूप धारण करके आ सकता है। अपना व्यवहार कोई समझ नहीं पाये और उस व्यक्ति के सामने हमारा defence नहीं दे पाये और मन में अपना बचाव देने की प्रबल इच्छा बनी रही, तो फिर वह समर्थन भी रात को शब्दरूप बनकर सामने आता है।

ख़ैर! विस्तार में नहीं जाना है। प्रश्नोत्तरी की सभा है और भी प्रश्न होंगे; इसलिए इसको छोड़ती हूँ। जिनकी श्रद्धा हो नाद पर और नाद में जो प्रक्षालन का तत्त्व है, उसको यदि समझ लें, तो जो भी प्रिय है वह नाम लेते रहें; तो नींद आ जाएगी। नाम पर श्रद्धा नहीं है, सगुण–साकार पर श्रद्धा नहीं है, तो कहूँगी उन व्यक्तियों को कि जब नींद नहीं आती है, तो उठकर कमरे में या छत पर या आँगन में टहलते रहें। क्यों टहलते रहें? इसलिए कि बिस्तर में पड़े रहेंगे और अन्दर जो घर्षण चलेगा कि

नींद नहीं आ रही है, नींद नहीं आ रही है – वह बहुत नुकसान करेगा। Friction is one of the most important leakages of vital energy. यह घर्षण लेकर पड़े रहेंगे – हाथपाँव पटकते-पटकते। आजकल इतना तो कोई करता ही नहीं है। पता नहीं, कौन-सी कौन-सी गोलियाँ होती हैं वे खा लेते हैं। नींद आने की गोलियाँ खाते रहते हैं। किसको धीरज है, किसको शांति है कि कोई उपाय करें? वे कहते हैं कि जितने पेटन्ट उपाय हैं न, घर में भरकर ही रखो दवायें। शायद काम में आ जायँ और अपने बिस्तर के पास ही रखते हैं। ज़रा लगा कि नींद नहीं आ रही, खा ली गोली। पर यह उपाय नहीं। इससे तो एक addiction खड़ा होता है।

लेकिन हाँ, यदि नाम में श्रद्धा न हो, तो उठकर टहलें और आकाश-दर्शन करें। मैं कोई प्रश्न विनोद में नहीं लेती हूँ। आप जानते हैं, सब गम्भीरता से लेती हूँ। आकाश-दर्शन करें। निरभ्र आकाश हो, सितारों से भरा हुआ। उस आकाश की ओर आँख लगाए हुए त्राटक कीजिए आकाश पर और आप देखेंगे कि नींद आ जाती है।

प्रश्न – आपने सुबह कहा कि शरीर और चित्त की शुद्धि के बिना मौन में प्रवेश करने पर चित्त की विक्षिप्तता होना संभव है। व्यक्ति कैसे निर्णय करे कि मौन मैं कब प्रवेश किया जाय?

उत्तर – यदि मौन में प्रवेश न करना हो, तो भी आहार-विहार की शुद्धि तो करेंगे न ? यानी मौन में प्रवेश न करना हो और ध्यानमार्ग से न जाना हो, तो भी आहार-विहार की शुद्धि, जीवन की शुद्धि, चित्त की शुद्धि – यह इष्ट है या नहीं ? कर्तव्य है या नहीं? शुद्धि ही मानवीय जीवन में शक्ति है।

मौन में प्रवेश करना हो या न करना हो, आहार-विहार की शुद्धि अपनी समझ के अनुसार आप करने तो लगिए। आहार कितना खाना है, कौन-सा अनुकूल है, कब खाना है, कितना मेरे शरीर के लिए आवश्यक है – हिसाब करके सात दिन, दस दिन देखिए तो सही! आहार का सम्बन्ध उपभोग्य विषय से बदल जायेगा और एक वैज्ञानिक गणित का सम्बन्ध आ जायेगा।

वैसे ही विचार का होगा। वाणी के व्यवहार को देख लीजिएगा एकाध सप्ताह तक, कि हम वाणी के व्यवहार में कितनी अपवित्रता, कितना पाखण्ड, कितना पाप करते है। कितना असत्य बोलते हैं, कितना अर्धसत्य बोलते है, कितना संदिग्ध रखते है, कितनी अतिशयोक्ति, अल्पोक्ति करते हैं, ये सब असत्य के प्रकार हैं । और ग़फ़लत में नहीं जान-बूझकर करते हैं।

यह यदि किया जाता है, महीना लगेगा, दो महीने लगेंगे, तीन महीने लगेंगे मनुष्य को अध्ययन में, निरीक्षण में, आत्म-निरीक्षण में और जो ढाँचा पड़ा हुआ है, उसको समझ कर बदलने में। इससे ज्यादा तो समय लगेगा नहीं। जीवन की मर्यादा ही कितनी है? साठ, सत्तर, पचहत्तर वर्ष तक जीता है आदमी सामान्यतया। इसलिए There is no moment to lose, we are racing against time, पचीस, तीस साल जो जी गये हैं, उनके पास खोने के लिए समय नहीं है; तो इतना वे करें।

अब क्या होगा ? कल जो कहा था, परसों जो कहा था कि मन में अपेक्षा का तनाव न हो कि इस मौन से, इस ध्यान से मुझे यह प्राप्त करना है। मुझे क्या मिलेगा? यह यदि हिसाब नहीं है, तो हेतु की शुद्धि तो हो गई।

अच्छा, बैठने लगे मौन में। कुछ दिन हुए और आपके ध्यान में आया कि बैठते हैं और आँखों में आँसू आ जाते हैं। बैठते हैं तो शरीर डोलने ही लगता हैं; तो छोड़ देना चाहिए बैठना थोड़े समय के लिए; क्योंकि कारण नहीं है कोई कि मौन में बैठने के बाद शरीर काँपने लगे, डोलने लगे, रोना आने लगे । कहीं कोई भय छिपा हुआ हैं, उसका यह काम तो नहीं है ? आप शान्ति में बैठते हैं तब भय काम कर जाता है और रूला देता है। इसको तुम नहीं समझना कि कुंडलिनी जागृत हो गई है; इसलिए यह सब हो रहा है। आँख ज़ोर से दबाकर न बैठिये। शान्ति से, स्वस्थता से बैठना नहीं आता है ? आँख बन्द करो कहा, तो इतनी जकड़कर बन्द करते हैं कि optic nerves (नेत्रनाड़ियों) पर आता है दबाव। शरीर को बहुत सख़्त करके बैठेंगे, तो उस जकड़न से भी कुछ आँखों के सामने प्रकाश आता है। आप कहीं भी आँख को दबाकर देखिए तो अलग-अलग प्रकार के रंगों के प्रकाश दिखेंगे।

मैं यह बहुत व्यथा से कह रही हूँ; क्योंकि लोगों ने कुंडलिनी–जागृति को, ये जो आन्तरिक होनेवाली घटनाएँ हैं, उनको बड़ा सस्ता बना दिया है और लोग अपने आपको भ्रम मे डालते हैं। बहुत जल्दी समझ लेते हैं – कहीं मेरी कुंडलिनी तो जागृत नहीं हुई? – खिलौना बना दिया है उसको।

वे घटनाएँ हैं, जागृत होती है कुंडलिनी, हो सकती है; लेकिन वह ऐसे राह चलते नहीं होती। कुछ पूर्वतैयारी हुई हो, तो जागृत हो जाती है। मेरी एक सहेली है। १९६०–६१ का ज़माना, जब मैं बनारस में रहती थी। बड़ी Sensitive और कविहृदय की बहन ! लेकिन वह जब मौन में बेठ जाय, तब शरीर काँपने लगे और आँखों में आँसू आ जाय। वह मुझे कहने लगी कि यह सब होता है। मैंने कहा, "तू जा कृष्णजी के पास" । कृष्णजी उन दिनों बनारस में थे। मैंने कहा, "तू पूछकर तो आ कि ऐसा क्यों होता है?" वह गई पूछने के लिए, "मैं ध्यान में बैठती हूँ और ऐसा होता है– My body begins to tremble, tears begin to role down"। श्री कृष्णजी ने कहा, "बन्द कर बैठना और तू चार मील घूमने जा। दिन मे तीन बार दूध पी। अच्छी तरह से व्यायाम कर। छः महीने नहीं बैठना। It requires sterling purity and strength of neurological system – शरीर के नाड़ी-संस्थान में, ज्ञानतन्तुओं में फ़ौलादी ताक़त चाहिए। तब मौन की अवस्था सहन होगी, धारण होगी। उस बहन ने वैसा किया। छः महीने तक मौन में बैठना छोड़कर उन्होंने शरीर-स्वास्थ्य की ओर ध्यान दिया। बाद में उस अवस्था में प्रवेश भी हुआ और बड़े आनन्द से वह बहन जी रही है। यह मैंने इसलिए कहा कि जब प्रतिकूल परिणाम नज़र आने लगे, तो मौन में बैठना छोड़कर पहले अपने मानसिक, कायिक और वाचिक व्यवहार की शुद्धि साधें।

प्रश्न – मानवीय चित्त को नीचे की दो बातों से कैसे दूर रखें?

(१) यह करूँ या वह करूँ – इससे कैसे दूर रहें?

(२) मन में बँधी हुई आदतों से कैसे मुक्त रहें? क्या जीवन आदत-मुक्त रह सकता है?

उत्तर – मानवीय मन को दो चीज़ों से कैसे दूर रखें? एक तो यह करूँ या वह करूँ – इस प्रकार की द्विधा से कैसे दूर रखें और आदतों से

मुक्त कैसे रहें ?

तो द्विधा क्यों होती है चित्त में? कब होती है मित्रो ! जब जीवन में मुझे क्या करना है, इसे समग्र जीवन के साथ जोड़ा न हो। मान लीजिए, सौ साल का मानवीय जीवन का अपने में कालखण्ड मान लिया, और क्या यह करूँ या वह करूँ प्रश्न खड़ा हुआ है, बीस साल की उम्र में, पचीस साल की उम्र में। साठ–सत्तर साल अभी बचे हैं। मुझे साठ-सत्तर वर्षो में अपने साथ, अपने में समाये हुए जीवन के साथ क्या करना है? मुझे क्या चाहिए जीवन में ? इसकी पहले निश्चिति हो जानी चाहिए। यह जीवन है, उसके साथ क्या करना हैं और क्या करने में आनन्द आयेगा? इसकी निश्चिति पहले हो जानी चाहिए।

अपने साथ बैठें, अपनी आदतों के साथ बैठें, मित्रों के साथ बैठें। चर्चा हो जानी चाहिए; क्योंकि जब तक क्या चाहिए, उसका पता नहीं है तब तक मनुष्य कुछ भी निर्णय नहीं कर पायेगा जीवन में।

द्विधा उसमें से आती है कि वह पल-पल के लिए निर्णय करना चाहता है और समग्रता का कोई निर्णय उसके पास नहीं है। समग्रता की कोई दिशा नहीं है, कोई अग्रिमताएँ नहीं हैं। जैसे जो आया उसको करते चले। फिर उसमें यह करूँगा तो यह होगा, वह करूँगा तो वह होगा, इस प्रकार का मंथन मन में चलता रहता हैं। यह द्विधा तब दूर होगी, जब समग्रता के विषय में आपका कोई अपना स्वायत्त दृष्टिकोण बनेगा। अपना कोई विचार बनेगा, कोई निश्चय बनेगा। इष्ट क्या है ? गन्तव्य क्या है ? कुछ पता चलेगा तो शायद अग्रिमताओं का एक क्रम (Order of priorities) बनेगा। उसमें किन मूल्यों पर चलना है, इसका मनुष्य को अंदाज़ आयेगा। समग्र जीवन में क्या करना है; अग्रिमताएँ कौन सी है, यह तय होते ही मूल्य हाथ में आ जाते हैं।

जीवन के मूल्य हाथ में आ गये। फिर जो एक विशिष्ट प्रसंग आपके सामने खड़ा होता है कभी, जिसमें पसंदगी या नापसंदगी करनी पड़ती है, उसमें द्विधा नहीं रहेगी; क्योंकि जो विशिष्ट काम सामने आया है, वहाँ समग्र को जोड़ देते हैं। उसके अनुकूल है या सुसंगत है या विसंगत है, प्रतिकूल है, विरोधी है यह देखेगा मनुष्य। वह समग्रता का विरोधी है, तो

वह अपने करने लायक तो रहा नहीं। जैसे रामतीर्थ ने अपने जीवन में युवावस्था में यह समझ लिया था कि प्रभु-साक्षात्कार, आत्म-साक्षात्कार जीवन का लक्ष्य है; तो उनके लिए एक व्याख्या बन गई : That which leads away from God is sin and that which leads towards Divinty is virtue. रामतीर्थ तो अध्यापक थे। वैसे तो गणित के अध्यापक थे पंजाब में - तीर्थराम गुसाई। तो उन्होंने व्याख्या बना ली, सिर्फ़ २५ साल की उम्र में ही। उन्होंने अपने लिए व्याख्या बनाई कि प्रभु से दूर ले जाता है जो कार्य, जो संगति, वह परिस्थिति पापमय है और प्रभु की और आत्म-साक्षात्कार की दिशा में जो जो कर्म, जो जो संगति ले जाती है वह सब पुण्य है। अब द्विधा कैसे रहेगी उनके लिए?

ऐसे अपने लिए छोटे-छोटे दीपक अन्तर में बना लेना। अपनी समझ के दीपक जला लेना। पराये दीपकों से कब तक काम चलेगा? अपने भीतर ही दीपक जला लेना, अपनी समझ का। अपने छोटे-से जीवन के लिए कहाँ जाना, क्या करना इसके कुछ निर्णय करना वह निर्णय इतने rigid न करना, इतने सख़्त न करना कि आगे कभी बदलेंगे नहीं। इतना कहना है – आप जहाँ खड़े हैं, वहाँ मेरी समझ के अनुसार मुझे यह कर्तव्य लगता है, करती हूँ या करता हूँ। उसमें नम्रता रहे, उसमें एक प्रकार का खुलापन रहे। यह नहीं कि मुझे यह दिखता है, मैं करती हूँ; इसलिए सबको करना चाहिए। सत्य का ठेका कोई ले सकता है? मेरे अनुभव में सत्य का कोई एक पहलू आया हो, वही पहलू आपके जीवन में, आपके प्रत्यय में आये तो उसको आप पकड़ लेंगे और वही पकड़ में आया हुआ एक पहलू सत्य की समग्रता को उद्‌घाटित करेगा।

इसलिए बाँधना नहीं है भविष्य को; लेकिन इतना कहना है कि वर्तमान में जहाँ खड़े हैं, वहाँ मुझे जीवन का आनन्द इसमें है, यह करने में प्रेम है; इस प्रकार की अग्रिमताएँ, मूल्य–मूल्यांकन और जीवन की दिशा निश्चित यदि हो जाती है, तो मैं समझती हूँ कि द्विधा नहीं रहेगी।

अब द्विधा का दूसरा अंग देखेंगे। कुछ लोगों को अपने ऊपर ज़रा भी भरोसा नहीं। अपने निर्णय पर भी भरोसा नहीं। अपने चित्त पर भी भरोसा नहीं। अपने पर भरोसा नहीं और दूसरों को देखेंगे। दूसरे ने कहा,

"तूने ठीक किया," उनको लगता है हाँ, मैंने ठीक किया। तो तीसरा आया, उसने कहा, "तुमने यह ग़लत किया।" बस डाँवाडोल हो गये। अपने पर भरोसा नहीं, दूसरों की आँखों में झाँक-झाँककर अपने क्रिया और कर्म का निर्णय करते हैं, उसकी समीक्षा करते हैं दूसरों के तराजू से। तो यह दूसरों के, दूसरों की बुद्धि से और दूसरों के निर्णय पर भरोसा रखकर कैसे काम चले? ऐसे कोई हितैषी सन्त मिले, आत्मानुभवी मिले तो बात अलग है।

तो द्विधा का एक कारण है, निर्णय के विषय में पराधीनता। आज खिचड़ी बनानी है या दाल-भात? उसका निर्णय करने में आधा घण्टा बीत गया। यह तो एक उदाहरण है। हम छोटे-छोटे कामों में ऐसा करते रहते हैं।

कुछ व्यक्तियों को, जो अपने आसपास के लोग हैं उनको उस क्षण के लिए, उस दिन के लिए राज़ी रखने में बहुत रुचि होती है। अपने आपको कुचल कर ऐसा करते हैं। अपनी समझ को दबाकर दूसरों को राज़ी रखना है। भय लगता है कि ये नाराज हो जायेंगे तो मैं कैसे जीऊँगी? अपने पर भरोसा नहीं हैं, इसलिए दूसरों को राज़ी करने की चिन्ता अधिक हैं। बजाय इसके कि अपने को क्या योग्य लगता है, क्या अयोग्य लगता है, यह सोचकर करें। सत्य की कीमत पर दूसरों को राज़ी रखा जाय? अपनी समझ में जो बात आती है, उसकी आहुति चढ़ाकर, दूसरों को राज़ी रखा जाय?

दूसरों को राज़ी रखने के लिए गोल-गोल बातें करेंगे, संदिग्ध बातें करेंगे, सत्य को दबा देंगे, अर्धसत्य बोलेंगे, सत्य बोलने का प्रसंग आया तो भाग जायेंगे। लोग तो इतनी युक्तियाँ उपयोग में लाते हैं कि मैं संसारियों के व्यवहार देखकर ऐसी अवाक् हो जाती हूँ; क्योंकि अध्यात्म बहुत सरल है। उसमें ये सब जटिलताएँ होती ही नहीं हैं। जैसे हैं, वैसे हैं और जैसा है वैसा – जैसा लगा वैसा कह दिया। अध्यात्म जैसा सरल तो जीवन में कुछ नहीं है। भक्ति करना सरल है। आपका संसार बड़ा कठिन है। संसारी लोग कैसे जीते हैं, मुझे पता नहीं चलता; क्योंकि पचास व्यक्तियों को खुश करने के लिए पचास मुखौटे पहन कर एक को उतारना, दूसरे को चढ़ाना, दूसरे को उतारना, तीसरे को चढ़ाना – यह जो धंधा करते रहते हैं –

कितना थकानेवाला है यह धंधा? मैं कह रही थी कि द्विधा इसके कारण भी है। राज़ी रखना हेतु नहीं हो सकता है। "मत तोड़ किसीके दिल को तू, वह ख़ास ख़ुदा की बैठक है।" तोड़ना नहीं है किसी का दिल – लेकिन दूसरों को राज़ी रखना, ख़ुश करना झूठ बोलकर! दम्भ से, पाखण्ड से, असत्य से, अर्धसत्य से यह निर्णय की शक्ति को कभी विकसित नहीं होने देता है। तो यदि व्यक्ति चाहता है कि यह करूँ या वह करूँ – ऐसी द्विधा में न रहें । अपने आपको सँभालें!

सर्वथा निर्दोष कर्म और निर्दोष निर्णय होने के लिए हम कोई परिपूर्ण व्यक्ति नहीं हैं। प्रत्येक निर्णय में कुछ न कुछ कमी रहती ही है; क्योंकि परिस्थिति की, समस्या की समग्रता को देखने जितना अपना विकास नहीं होता। कुछ पहलू ध्यान में आते हैं, कुछ पहलू छूट जाते हैं। तो आप यदि यह सोचेंगे कि मैं इस ढंग से काम करूँ कि उसमें कोई भूल न होने पाए, सब तरफ़ से उसकी प्रशंसा होगी, सबको स्वीकार्य होगा, उसमें कोई दोष न रहे; तो कुछ कर ही नही पायेंगे। इसलिए जैसा भी कर्म करें, जैसा भी निर्णय करें, अपनी समझ और शक्ति पूरी लगा दें। भूलें होंगी, दोष होंगे तो भूलों से सीखेंगे। ठोकर खायेंगे, लेकिन सीखेंगे ज़रूर। इस प्रकार मनुष्य को निर्भयता से व्यवहार करना सीखना है।

अन्तिम मुद्दा यह कह दूँ कि यह जो अनिर्णय की अवस्था है - inner suspense, वह मनुष्य के विकास को रोक देती है। महत्त्व की बात तो यह है कि जीवन जीने में है। जीवन जीने का यह पल; यह आज, यह क्षण यदि हम जाने देंगे हाथ से, तो वह वापस आनेवाला नही है। इसलिए जीवन के जो जो क्षण मिले, जीने के जो जो अवसर मिले, वे पवित्र यज्ञकर्म हैं ऐसा समझकर उसी समय कर डालें। मालूम नहीं कल मिले या न मिले। इस प्रकार reverence for life – जीवन के प्रति श्रद्धा हो और 'मृत्युना केशेषु गृहीत इव धर्ममाचरेत्।' चोटी प्रभु के हाथ में है, इसका भान हो तो फिर मुझे लगता है कि द्विधा नहीं रहेगी, निर्णय होते चले जायेंगे, भूलें होती चली जायेंगी, भूलों से सीखेंगे, अपयश से सीखेंगे।

गन्दी या बुरी आदतें हैं, उनसे कैसे मुक्त हों-यह सवाल पूछा गया है।

वे बुरी या गन्दी हैं - यह किसने कहा? मेरी बुद्धि में आया है, बुद्धि

की समझ में आया है, मैंने उसका बुरापन देख लिया है। कल कहा था न ! living encounter with the fact इसमें एक शक्ति होती है। अमुक आदत जो है वह आदत अच्छी है या बुरी है ? किसने निर्णय किया ? आपकी बुद्धि ने यह आपको बतला दिया कि यह ग़लत है। Maladjustment है। ग़लत और सही, पाप और पुण्य ये चीज़ें हैं क्या ? lack of adjustment or maladjustment ? व्यवस्था का अभाव है या व्यवस्था में असंतुलन है और दूसरी कोई चीज़ नहीं हैं पाप-पुण्य जैसी।

तो अपनी समझ में यदि आये, उसी क्षण जीना शुरू कर दिया। इस प्रकार का एक व्रत मनुष्य धारण करें कि जिस समय मेरी समझ में आयेगा, उसको जीना तत्काल शुरू कर दूँगा; लेकिन इससे आगे चलें। क्या बिना आदतों के जीवन होता है ? मैं तो आदत को अपने आपमें बुरी वस्तु मानती हूँ। मैं आदतों में अच्छी-बुरी ऐसी व्याख्या नहीं करती हूँ। मैंने प्रश्नकर्ता का पूर्वार्ध लेकर जवाब दे दिया। यदि यह बुरी है, ऐसा आपकी समझ में आया तो उसको जीना शुरू करने का व्रत लेते ही, दृढ़ निश्चय करते ही शक्ति आ जायगी। जो बात समझ में आई, उसको जीने में समय की दूरी नहीं आने देनी चाहिए कि आज समझ में आया, कल करेंगे। जब समझ में आया तभी प्रारंभ करें जीने का। तभी वे परिवर्तन लायें, तो हो सकता है कि वे आदतें, जिनको आपने बुरी कहा, छूट जायेंगी।

अब आइए कि आदत किसे कहते हैं ? आप रोज़ सोते हैं वह आदत के कारण सोते हैं ? Is sleep a repetitive mechanistic action ? हमारा दिन में जितना व्यवहार होता हैं वह आदतन होता है या स्वाधीन व्यवहार है ?

आदत यानी जिसमें ध्यान न देना पड़े। जिसमें किसी प्रकार का ध्यान न देना पड़े। उसे यान्त्रिकता से कर गये। जैसे सर्कस में घोड़े हैं, हाथी हैं, इनको Training दी जाती है न ! तो ऐसा Training दिया हुआ है हमारा शरीर। अब अपने आप यदि इस प्रकार से यान्त्रिक क्रियाओं को बहने देंगे तो जीयेंगे कब ? आदतें तो हैं किसी भी व्यवहार के क्रम का एक ढाँचा बनाकर, ढाँचे का पुनरावर्तन करना। इसीको आदत कहेंगे।

दोहराने में कोई ख्याल रखने की ज़रूरत नहीं है। वह काम अनवधान में भी चलता रहता है।

तो यदि आदत से ऐसी यान्त्रिक क्रियाएँ दिन में इस घण्टे चलती हों तो जीयेंगे कब? जब आप सावधान है, तब जीते हैं। कर्म हो रहा है, उसका भान है। किस परिस्थिति में हो रहा है, उसका भान है। सभानता में ही जीवन है मित्रो! बेभानता में तो जीवन नहीं है। यान्त्रिक क्रियाएँ होती जायेंगी, तो शरीर की शक्ति खर्च होगी; लेकिन जीने का कर्म नहीं होगा। क्रियाओं का होते रहना और पाँच साल से अस्सी साल का हो जाना, यह कोई जीवन नहीं है। जितने घण्टे स्वाधीनता से सावधान रहकर सभानता में, कुछ सम्बन्धों में जी गये तो वही तो जीवन है। हो सकता है कि अस्सी साल में या साठ साल में हम छः ही घण्टे जीयें हों और बाक़ी सब परम्पराओं के, आदतों के, पुनरावर्तन में जीवन गया। तो आदतों के पुनरावर्तन में जीवन का सत्त्व नहीं, शील नहीं, तेज नहीं; यह बात यदि समझ में आये तो मनुष्य आदत क्यों पड़ने दे?

आदत के बिना जीना सम्भव है। प्रत्येक पल में मनुष्य की मृत्यु और प्रत्येक पल में उसका पुनर्जन्म होना सम्भव है -- यह योगियों की जीवन-कला का रहस्य है।

प्रश्न – भक्तियोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग वगैरह में शम, दम, विवेक, वैराग्य पर बहुत बल दिया जाता है। ध्यानयोग के लिए आपने इनके लिए कोई आग्रह बताया नहीं है। तो ध्यान में उसकी ज़रूरत है या नहीं? और अगर है तो कितने अंश तक?

उत्तर – आपने देखा होगा कि मैं शुरू से एक ही बात पर घूम फिरकर आती हूँ और ज़ोर देती हूँ। वह बात है आपके अन्दर जो समझने की शक्ति है, उस समझशक्ति पर आप श्रद्धा रखें। वह समझने की शक्ति आपके हृदय में, आपके अन्तरंग में बसनेवाली प्रभु की विभूति है। शब्दों का ज्ञान बुद्धि ग्रहण करती है; लेकिन शब्द के ज्ञान से अर्थ और भाव को ग्रहण कर, उसको बोध में परिवर्तित कर देने की शक्ति समझ में है।

तो जो मार्ग जीवन में पकड़ना हो, उस मार्ग पर चलने के लिए क्या करना आवश्यक है, इसका स्वयं विचार करें बैठकर और अपने जो निष्कर्ष

होंगे; अपनी समझ में जो आयेगा वह अपने ही उपयोग के लिए लिखें और उस पर चलें। शम साधना है, दम करना है, वैराग्य को साधना पड़ेगा। इस प्रकार ग्रन्थों में लिखी हुई बात को ध्येय बनाकर या उसे एक गन्तव्य मानकर, कर्तव्य मानकर अपने सभी कार्यों को उसके साथ approximate करना, वह जो ग्रन्थों में लिखा हैं, उसको कसौटी बनाकर अपने आचरण को उस कसौटी पर लगाते रहना, वैसा मुझे बनना है ऐसा मानकर, अन्तर में वह जाग उठी हो या नहीं, बाह्याचार या मिथ्याचार करते रहना, यह धर्म के और आध्यात्मिक साधना के नाम से किया जाता रहा है और आप भी शायद करते होंगे। पाखण्ड से, दम्भ से और आन्तरिक संघर्ष से मुक्त रहने के लिए किसी भी चीज़ को ध्येय रूप में सामने रखे बिना अपने जीवन की जो यथार्थता है उसको पहले देखें। यथार्थता की धरती पर खड़े हों कि हम ऐसे हैं। हमारे गुण-दोष इस प्रकार के हैं। आत्म-निरीक्षण कर अपने आपको व्यवहार में निरख-परख लें और ऐसे हम यदि ध्यानपथ पर चलना चाहते हैं, तो हमें क्या करना चाहिए इसका चिन्तन करें।

अपनी समझ में एक बात आयेगी तो उसी बात पर चल पड़ें। तो मैं ज़ोर दे रही हूँ समझने की शक्ति पर। और उस समय के नाज़ुक धागे को पकड़कर चलेंगे, व्यवहृत होगी समझ, तो व्यवहार से वह समृद्ध होगी, उसकी गहराई बढ़ती चली जायेगी और उसका विस्तार भी बढ़ता चला जायेगा। जीवन के स्पर्श से, आचरण के स्पर्श से समझ समृद्ध होती है।

आप कहेंगे – यह शमदमादि के महत्त्व का जो रास्ता है, उसको क्या आप हेय समझते हैं? मैं किसीको भी हेय नहीं समझती, उपेक्षणीय नहीं मानती; लेकिन ज़रा अपने आपको देखिये तो सही। इस युग में बुद्धि का विकास करने के प्रयास में मनुष्य ने चित्त की निर्दोषता और श्रद्धा दोनों को खो दिया है। पहले तो शमदमादि षड्गुण चाहिए, ऐश्वर्य चाहिए – कहने से साधकों के हृदय में उसका सीधा स्वीकार हो जाता था; लेकिन आज कोई कहने जायँ तो कहेंगे – "जो कहता है व्यक्ति उसके जीवन में शम है? दम है? वैराग्य है या नहीं? हमें क्यों बतलाते है। वैराग्य से क्या होगा? ऐसा प्रतिकार उठता है। मनुष्य के भीतर श्रद्धा रखने की शक्ति पंगु बनती चली जा रही है। वह विश्वास रखेगा। उसको विश्वास का संग्रह

भी चाहिए collections of beliefs और यदि मुश्किल में पड़ेगा तो ज्योतिषी से लेकर यान्त्रिक, तान्त्रिक तक और जादूटोना करनेवाले तक ये सुशिक्षित लोग भी पहुँच जायेंगे। मान्यता अलग चीज़ है, विश्वास अलग चीज है। विश्वास यानी belief और मान्यता यानी conviction और श्रद्धा एक अलग चीज़ है। श्रद्धा यानी faith । सभी प्राणों की और सभी इन्द्रियों की शक्तियाँ उन्मुख होकर एक पिंड पर आ जाती हैं तब श्रद्धा कहलाती है - तब कहा जाता है कि श्रद्धा पहाड़ को हिला दे सकती है। लेकिन आधुनिक मनुष्य में बुद्धि का विकास हुआ, शब्दज्ञान बढ़ा, उसकी बौद्धिक कुशलता बढ़ी, उसकी बुद्धि से अनेक कलाएँ खिलने लगीं - साहित्य, संगीत कला में, दर्शनशास्त्र में, अनेकानेक कला - शिल्पकला, नाट्यकला - जीवन बड़ा समृद्ध बना है बौद्धिक दृष्टि से। लेकिन बुद्धि का विकास करते करते दूसरा एक जो अंग है वह पंगु हो गया। आज के मानव में श्रद्धा रखने की शक्ति नहीं है।

जिसने बुद्धि को इतना तेज बनाया, तीक्ष्ण बनाया, उसको कहती हूँ कि चल भाई, तेरे ही पथ पर आगे चल। तेरी बुद्धि की समझ में क्या आता है, उसको तू पकड़ और आगे चल। यदि समझ में आता है कि संयम से रहना है, तो संयम का जो अर्थ तेरी समझ में आता है उसी प्रकार जीने लग। मैं पुरानी भाषा उपयोग में नहीं ले रही हूँ। आज के विज्ञान के युग में मनुष्य जहाँ खड़ा है, अपनी समझ में कम से कम उसकी श्रद्धा जाग उठे। एक बार यदि श्रद्धा का स्पर्श उसके चित्त को हो जायेगा और समझ को आचरण में लाने लगेगा, तो हो सकता है व्यक्ति के जीवन में नये क्षितिज खुलेंगे।

महाराष्ट्र में सन्त एकनाथ महाराज हो गये । उन्होंने श्रीमद् भागवत पर टीका लिखी है – एकनाथी भागवत के नाम से वह प्रसिद्ध है। उसमें एकनाथ महाराज कहते हैं – ''माझीये ठाईं अनुरक्ति, हेंचि विषयीं विरक्ति'' – मुझमें जिसका चित्त अनुरक्त हुआ, उस अनुरक्ति की निष्पत्ति क्या है? मेरे विषय में चित्त में अनुरक्ति उत्पन्न होते ही वह व्यक्त होती है – विषयों के प्रति वैराग्य के रूप में। आप चाहें तो शमदमादि की–वैराग्य की भाषा बोलें। एक प्रकार से वह जनमानस के पास जाने की, जनमानस

से संवाद साधने की भाषा रही। आगे की भाषा विज्ञान की होगी। तो ज़ोर दें समझ पर और समझ संयम के रास्ते पर ले जायेगी। वैज्ञानिक दृष्टि से जीवन को देखने लगेंगे तो आपके सभी खानपानादि से लेकर कायिक, वाचिक, मानसिक सभी व्यवहारों में संयम आ बैठेगा। कलियुग में जीवन भी तो संक्षिप्त है मनुष्य का। छोटी-सी ज़िन्दगी है। इसलिए यह समझ की, संयम की और जीवन परिवर्तन की बात लोगों के सामने रखती हूँ।

प्रश्न – धारणा के लिए चक्रों का स्थान और भयस्थान कौन-से हैं? कुंडलिनी शक्ति क्या हैं? उसका जागरण कैसे हो?

उत्तर – जिनको कुंडलिनी शक्ति के जागरण में रस हों या केवल बौद्धिक कुतूहल हों, तो मैं उनसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ कि आप कश्मीर में पंडित गोपीनाथ रहते हैं, श्रीनगर में उनका कुंडलिनी योग–शोध-संस्थान है, उनके ग्रंथ पढ़िये। कुंडलिनी योग पर अनेक ग्रन्थ हैं। श्रीज्ञानेश्वरी नामका जो ग्रंथ है, उसका छठा अध्याय पढ़िये कि कुंडलिनी कैसी शक्ति है?

इतना कह दूँ कि यह शक्ति शरीर में है जरूर और यह शक्ति जागृत होती है। इसके जागृत होने से और इसका संचार होने से अनेक शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक परिवर्तन उस व्यक्ति के जीवन में आते हैं। लेकिन पैंतालीस मिनट की प्रश्नोत्तरी में कुंडलिनी शक्ति के विषय में बोलने जाऊँगी, तो वह मेरी दृष्टि से एक नादानी होगी। बड़ा गम्भीर विषय है यह।

आपने पूछा है चक्रों के बारे में – धारणा के लिए चक्रों का स्थान और भयस्थान।

मैं कह रही हूँ ध्यान की बात। मैं कह रही हूँ मन की सभी क्रियाओं को शान्त होने देने की बात । मन का जो आयाम है, उसमें आगे जाने की, आयाम बदलने की क्रांतिकारी बात और प्रश्नकर्ता जानना चाहते हैं कि आप उस धारणा और चक्रों के बारे में कहें।

हठयोग का अभ्यास करनेवाले, 'हठयोग-प्रदीपिका' लेकर बैठें तो मूलाधार चक्र से सहस्रदल कमल तक – ब्रह्मरन्ध्र तक के चक्रों की जानकारी उनको मिल जायेगी। किन चक्रों पर धारणा करें? मैं समझती हूँ कि चक्रों पर धारणा करना गृहस्थाश्रमी के लिए बहुत इच्छनीय नहीं है।

सामान्यतया जो भक्तिमार्ग से जाते हैं, वे हृदयचक्र पर धारणा करते हैं। जिन्हें मन से ऊपर जाना है – बुद्धि, मन या भावना इन सबके पसारे से – और संसार से अलग होना है, वे भ्रूमध्य में आज्ञा चक्र पर धारणा करते हैं। यहाँ तक की परिपाटी रही है; लेकिन गृहस्थाश्रमी व्यक्ति चक्रों पर यदि धारणा करने लगें, तो जो शरीर के धर्म हैं इनमें कुछ क्षोभ पैदा होगा। उसे दिन में पाँच-छः घण्टे काम करना है, घर भी सँभालना है। समाज में भी रहना है और चक्रों के त्राटक में लगेंगे तो कुछ क्षोभ पैदा होगा ही।

आज्ञाचक्र पर धारणा करनेवाले की नींद घट जाती है। भूख घट जाती है। शरीर में उष्णता बढ़ती है। यह सब भयस्थान के रूप में नहीं बतला रही हूँ। ये सहज परिणाम हैं। उस उष्णता से शरीर को बचाने के लिए जो उपाय करने पड़ते है वे उपाय, उन उपायों का ज्ञान, उन उपायों को करने का धीरज अपने पास होता नहीं है।

आयुर्वेद योगशास्त्र का एक अंग है। आयुर्वेद की मदद हो और योगशास्त्र की मदद हो, तो उपाय किये जाते हैं। अग्नितत्त्व को प्रदीप्त करते हैं जब आप भ्रूमध्य में धारणा करते हैं तब। हृदय-चक्र में धारणा करते हैं, तो शीतलता का अंश बढ़ता है। क्यों बढ़ता है यह इस शिविर का विषय नहीं है। इसकी चर्चा हो सकती है; लेकिन यहाँ न समय है, न विषय प्रस्तुत है। ऐसी Technicalities में मैं जान-बूझकर नहीं उतरी; क्योंकि फिर ऐसी चर्चाएँ सुनने का मन को एक शौक़ हो जाता है। अपने को तो जीने में रस पैदा करना है। जो जीवन है उसकी गुणवत्ता बदले, मनुष्य जो अहं के केन्द्र में फँसा है, वहाँ से बाहर निकले, इसमें रस है।

इस संसार में आध्यात्मिक व्यक्ति के लिए जीना मुश्किल है। वह अन्दर की गहरी बातें करने लगें, तो उसको मनुष्य से उठाकर, हद पार कर भगवान् बना देंगे; भगवती बना देंगे। आन्तरिक बातों को करने लगे, तो उतना सुनने से ही मनुष्य के चित्त में ऐसा कुछ आदरभाव पैदा होता है कि वह अपने से बोलनेवाले व्यक्ति को इतना उच्च समझ लेता है, आरोपण करता है उस व्यक्ति पर और वह व्यक्ति एकाकी, दूर पड़ जाती है। In the psychological authority about the speaker that the listener creates in his own mind, the

speaker gets isolated. और मुझे अपनी सामान्यता छोड़कर पलभर के लिए भी कुछ भी नहीं चाहिए। भले त्रैलोक्य का साम्राज्य हो। सामान्य मानव बनकर जीने में बड़ा आनन्द हैं। रवीन्द्रनाथ ने गाया है–

मानवेर माझे आमी बाचिवेर चाही।

ना चाही भुक्ति ना चाही भक्ति, आमी ना चाही मुक्ति॥

प्रभु, मुझे भुक्ति (भोग) नहीं चाहिए, भक्ति नहीं चाहिए, मुक्ति भी नहीं चाहिए। मनुष्यों के स्नेह के शत-शत बंधनों में मनुष्यों के बीच हम जीना चाहते हैं। इसलिए इन चर्चाओं को उठाती नहीं हूँ; लेकिन आपने जब प्रश्न ही किया, तो यह कोई रहस्यवाद नहीं है। इसका एक विज्ञान है। यह कोई चमत्कार का विषय नहीं हैं; लेकिन अव्यक्त सृष्टि के व्यवहारों को चमत्कार कहने का रिवाज पड़ा है।

तो हृदयचक्र पर धारणा करनेवाले के शरीर में कुछ ठंडक बढ़ जाती है। शीतलता बढ़ती है। वह उस शीतलता को counteract न करे, तो बिना कारण शरीर में एक व्याधि का आभास होता है। उसको व्याधि समझकर उपाय करने जायँ तो बड़ी मुश्किल पैदा होती है।

तो भाई ! जिनको चक्रों का अभ्यास करना हो, वे थियोसोफिकल सोसायटी के प्रमाणग्रन्थ हैं उन्हें पढ़े। ब्रह्मविद्या और मधुविद्या पर जो ग्रन्थ लिखे हैं, वहाँ से महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज के ग्रन्थों तक या कुण्डलिनी रिसर्च करनेवाले ग्रन्थ भी वहाँ उपलब्ध हैं। किसी अनुभवी व्यक्ति के पास बैठकर उसका शरीरगत अस्तित्व (physical existence) है या नहीं, उसका आधुनिक शरीर-विज्ञान के साथ क्या सम्बन्ध है और यदि उसके ऊपर धारणा करते हैं, तो ये परिणाम क्यों होते हैं? यह सब समझ लीजियेगा। यह मेरी हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि बिना समझे कुछ न करें।

अपनी समझ से चला हुआ एक कदम परायी, उधार ली हुई; समझ से चले हुए सौ कदमों के बराबर या उससे भी बढ़कर है। जिनको आधे मिनट के लिए भी भ्रूमध्य में दृष्टि केन्द्रित करने से चक्कर आने लगते हैं, Vomiting होने लगता है, उन लोगों से हम कैसी बात करें? उनको बताने लगें और कोई प्रयोग करने लगा घर जाकर, तो फिर कहेंगे कि

हम नारेश्वर गये थे; वहाँ ऐसा सुना था तो किया। करना, कराना और अनुमोदन – उसके भागीदार बन जायेंगे हम। इसलिए इस विषय पर की चर्चा हम छोड़ देते हैं। कोई अभ्यासी हो तो वह पत्र-व्यवहार करे। उसके आवश्यक ग्रन्थ हैं इनका निर्देश करूँगी या उनको कोई प्रयोग करने हों, तो ऐसे अधिकारी व्यक्ति कोई मेरी जान--पहचान के होंगे, तो उनके नाम भी सुझा दूँगी।

प्रश्न – प्रार्थना और ध्यान में क्या अन्तर है? कृपया समझाइये।

उत्तर – प्रार्थना हे चित्त की एक वृत्ति। अपनी अपूर्णताओं का भान होता है। अपनी मर्यादाओं का भान होता है। अन्दर से एक जीवन का हुंकार उठता है, 'अहमस्मि, अहमस्मि' – 'मैं हूँ', 'मैं हूँ।' यह जो 'मैं हूँ' की पुकार उठती है, वह है हुंकार जीवन का। वह न कभी बच्चा होता है, न बूढ़ा होता है, न जवान होता है। शरीर के पात्र में शिशु अवस्था, किशोर अवस्था, यौवन अवस्था – यह सब पार होते हुए मनुष्य देख लेता है। लेकिन वह जो हमारा होने का प्रत्यय है, 'मैं हूँ', या 'मैं पुरुष हूँ', 'मैं बूढ़ा हूँ' या 'मैं शिशु हूँ' – इस प्रकार का नहीं रहता है। एक निरपेक्ष हुंकार रहता है। यह कहाँ से उठता है, क्यों उठता है? इस बाह्य सृष्टि के साथ मेरा क्या सम्बन्ध है? किसने बनाई होगी यह सृष्टि? वह कहाँ है? – यानी साढ़े तीन हाथ के मर्यादित देह में रहते हुए भी अमर्याद को देखने, समझने और पाने की प्राणों में एक मूक अभीप्सा लेकर मनुष्य का जन्म होता है। मानता है, जानता है वह कि शरीर अशुद्ध है, कषाय है, पुद्‌गलों का समुदाय है, सत्त्व, रज, तम का बना हुआ है - पता नहीं कितने लोगों ने क्या-क्या कह दिया – 'वस्त्रं शवाच्छादनम् भोजनं व्रणलेपनम्' – यहाँ तक कहनेवाले लोग हैं कि वस्त्र शव पर का आच्छादन है और भोजन व्रणलेपन है। वैराग्य की महिमा गाने के लिए यहाँ तक गये हैं लोग!

तो इतने मर्यादित और सदोष शरीर में रहते हुए भी निर्दोषता की प्यास, अशुद्धि में रहते हुए भी शुद्धि की प्यास, अपवित्रता का भान होते हुए भी पवित्रता की प्यास कभी मनुष्य की बुझती नहीं है। क्योंकि उसके भीतर जो जीवन का हुंकार है – नित्य शुद्ध, प्रबुद्ध सत्ता का जो हुंकार है, वह उसको चैन नहीं पड़ने देता। देश और काल में बँधा हुआ है मनुष्य।

मनुष्य की काया बँधी हुई है। मनुष्य का मन शब्द के डोरे से बँधा हुआ है भूतकाल से और फिर भी भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों को झटका मारकर काल को क्या, अकाल को भी चीरते हुए कालातीत जो सत्ता है, उसको देखने की लालसा – पता नहीं क्यों मनुष्य के प्राणो में हैं ही। हिन्दुस्तान में ही नहीं, सारी दुनिया-भर में।

ऑस्ट्रेलिया के आदिवासियों में मैंने देखा है। जापान में भी यही देखा। मध्यपूर्व में गई तो वहाँ भी । योरोपीय देशों में गई, साम्यवादी देशों में गई। अरे ! मुझे 'युनिवर्सिटी ऑफ चायना' में बोलना पड़ा। शायद १९७१ या ७२ का ज़माना होगा। तो वहाँ मैंने कहा, "देखो भाई, आपके देश में तो ईश्वर के विषय में बोलना blasphemy हो जाएगी ! to tell about God in your country will be blasphemy." तो बेचारे हँसने लगे – कॉलेज के प्रोफेसर्स और विद्यार्थी। तो मैंने कहा, 'अब देखो, आप परमेश्वर को नहीं मानते हैं, लेकिन 'मन' है उसको तो मानते हो न?' वहाँ फिलोसफी के विद्यार्थी थे। उन्होंने कहा, "हाँ।" मैंने कहा, "चलो, जहाँ आप खड़े हैं, जिसको आप मानते हैं, उसीको लेकर बातें करेंगे। मन है, बुद्धि है इतना मानते हैं आप?" वे बोले, "हाँ।" मैंने कहा – "मेरा आधा काम हो गया।"

तो वह जो प्यास है – मन के परे क्या है? यह जानने की प्यास उन बच्चों में भी थी जो आज चायना में पैदा हुए हैं। तो सभी देशों में देखा है लाल, काले, पीले, गोरे सभी लोगों में देखा है।

तो प्रार्थना क्या है? मर्यादा मे रहते हुए भी अमर्याद के साथ भाव से सम्बन्ध बाँधने की कला। हे प्रभु ! आप हैं। आप सर्वव्यापी हैं। सर्वान्तर्यामी है; क्योंकि देह सर्वव्यापी नहीं, देह एकदेशी है। बैठा है एकदेशीं शरीर में और प्यास है सर्वान्तर्यामी बनने की। खुद नहीं है तो सर्वान्तर्यामी आप हैं, मैं आपका हूँ।

कैसी सुन्दर युक्ति है भाई। हमारे पूर्वज थे जीवनरसिक ! वे कहीं हार माननेवाले नहीं थे। तो प्रार्थना है। अपनी अपूर्णताओं का, मर्यादाओं का, अपनी अशुद्धियों का भान जिसे हो गया – वह व्यक्ति अपनी प्यास को, अपनी भूख को देखता है। बँधा हुआ है मन में और प्यास है मुक्ति

की। इसमें देखो तो कितना मज़ा है। मनुष्य क्या है? हाडमाँस का बना हुआ व्यक्ति। एक-एक व्यक्ति एक-एक काव्य है।

तो प्रार्थना में मनुष्य बैठता है। अनन्त का एक विग्रह उसने सान्त में खड़ा किया। हम तो मनुष्य को ही अनन्त के विग्रह के रूप में जानते हैं और देखते हैं; लेकिन अनन्त का विग्रह खड़ा कर दिया। फिर उसके पास बैठते हैं, "हे प्रभु ! आप सब जानते हैं। हे प्रभु ! आप घटघटवासी हैं"। तो क्या मनुष्य इतना समझदार नहीं है कि वह जो ढाई हाथ की मूर्ति है या ढाई इंच की मूर्ति है वह घटघटवासी हो गई? लेकिन यह एक युक्ति है। तो प्रार्थना अपनी मर्यादाओं के भान में रहते हुए, मर्यादाओं को लाँघने की जो तृषा है, उसकी तृप्ति की एक युक्ति है।

और "हे प्रभु ! आप हैं ही, मेरे साथ और कोई हो न हो, आप हैं ही सर्वदा" यह कहते हुए वह बल पाता है। अपने को कोई दूसरा न समझ पाये, प्रभु मुझे समझनेवाले हैं, इससे उसको एक सहारा होता है।

और दिनभर के जीवन के संघर्ष के बाद, रात को वह एक मीठी नींद, सुख की नींद, चैन की नींद लेता है। तो प्रार्थना के द्वारा जीवन के अनेक संघर्षो में आत्मविश्वासपूर्वक "प्रभु मेरे साथ हैं" इसको मानते हुए व्यक्ति चलता हैं।

ध्यान क्या है? ध्यान वृत्ति नहीं है। वहाँ सभी वृत्तियों का शमन है। प्रार्थना में मैं भी है और तू भी है। और हे प्रभु ! आप मेरे हो, मैं आपका हूँ। यह 'मैं आपका' और 'आप मेरे' - इस प्रकार द्वैत को लाँघ जाने की, एकता में आने की युक्ति है प्रार्थना में।

और जिस मन में 'मैं' और 'तू' का भाव है, जिस मन में मर्यादाओं का ख्याल है, जिस मन और बुद्धि में अपवित्रता–पवित्रता का ख्याल हैं, उस मन की ही समस्त गतियों का शान्त हो जाना ध्यान है। इसलिए वहाँ वृत्ति नहीं, प्रवृत्ति नहीं, निवृत्ति नहीं, 'देहोऽस्मि' भाव नहीं, 'अहं ब्रह्मास्मि' यह भाव भी नहीं। 'भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि'। लेकिन भावातीत, गुणातीत अवस्था ही नहीं हो, तो आप नमन कैसे करेंगे? 'देह छतां जेनी दशा वर्ते देहातीत।' ऐसा यदि जीवन का आयाम ही न हो, तो आप क्या वर्णन करेंगे। 'ते ज्ञानीना चरणमां वंदन हो अगणित।' कैसे

कहेंगे ?

तो ध्यान जीवन का एक आयाम जरूर है। ध्यान उस आयाम की बात करता है, जहाँ मन की एक भी गति चलती नहीं। व्यक्तिगत चेतना अपनी सम्पूर्णता को लेकर लीन हो गई है -- Gone into abeyance, gone into non action. यह है प्रार्थना और ध्यान के बीच का अन्तर।

प्रार्थना की वृत्ति अहं को उठने नहीं देती। गाँधीजी कहते थे–"अन्न के बिना रह सकूँगा, पानी के बिना रह सकूँगा, लेकिन प्रार्थना के बिना एक पलभर के लिए भी जी नहीं सकता। मेरे भीतर प्रार्थना का एकतारा बजता ही रहता है।" तो अहंकार को उठने ही नहीं देती प्रार्थना की वृत्ति और ध्यान में अहंकार लीन हो गया होता है।

प्रार्थना की वृत्ति में जीनेवाले व्यक्ति पुरुषार्थ करते हैं। वे अहंकारातीत नहीं हो गये हैं; लेकिन अहं उनका इतना विनम्र हुआ है, इतना क्षीण हुआ है कि आर्जव बन गया है और ध्यानयोगी व्यक्ति की चेतना का आयाम बदल गया है। इसलिए वहाँ अहंकार या निरहंकार का सवाल नहीं उठता। जैसे किसी स्लेट पर लिखा हुआ कोई पोंछ डाले, वैसे चेतना पर से भेदात्मक जो संस्कार हैं, भेदात्मिका जितनी वृत्तियाँ हैं, जितने प्रत्यय हैं; वे सब धुल-पुंछ गये हैं। कुछ नहीं है यहाँ।

मैं आशा करती हूँ कि इतने से आपका सावधान होगा। प्रश्नोत्तरी में मीमांसा नहीं होती। केवल दिशादर्शन होता है।

(४-२-८१, मध्याह्न-रात्रि बैठक में)

पाँचवा प्रवचन

पंचधारा के संगमतीर्थ में

यह शिविर जो हुआ है यहाँ, वह एक अनूठा शिविर है। एक अद्‌भुत और अपूर्व शिविर है और इससे भी आगे कहूँ कि मेरे जीवन में इस प्रकार का यह पहला शिविर है, तो उसमें अतिशयोक्ति नहीं होगी। शिविर की कल्पना और शिविर के लिए निमन्त्रण देनेवाले कौन-कौन हैं, यह आपके ध्यान में आया होगा।

पंचधाराओं का संगमस्थान

एक है थियॉसोफिकल सोसायटी। ब्रह्मविद्या की उपासना सारे जगत् में हो, यह जो वैश्विक मानव-परिवार है, उसमें भ्रातृभाव जागृत हो, सर्व धर्मों में जो सत्य निहित है, उस सत्य को देखने की दृष्टि और अवान्तर गौण को छोड़ने की दृष्टि मनुष्य को मिले; विज्ञान और यंत्रविज्ञान से मिलनेवाले भौतिक सुखों में मनुष्य रुक न जाय, उससे आगे जो अतीन्द्रिय और अतीन्द्रिय के आगे जो अनन्त का विस्तार है, वहाँ तक पहुँचने में मनुष्य अपने जीवन की सार्थकता समझे – यह बात यह जो थियॉसोफिकल सोसायटी है, उसकी स्थापना के अधिष्ठान में थी। जमाना ई.स. १८७०-७५ का था। अमेरिका में इसकी स्थापना की बात सोचती थीं मैडम ब्लॅवेट्स्की। वे जन्म से रशियन थीं और धर्म से-unlabelled uncommitted human being. आप कल्पना कर सकते हैं कि सौ वर्ष पहले मानवजाति कहाँ खड़ी थी? वहाँ भौतिकता के उपभोग के वातावरण में जिनकी नज़रें विज्ञान से चकाचौंध हो गई थीं, उनको पहला धक्का देकर जगाने का काम मातृस्वरूपा ब्लॅवेट्स्की ने किया है, यह मनुष्यजाति भूल नहीं सकेगी।

मैं हमेशा अधिष्ठानों को देखा करती हूँ। प्रत्येक की मूल दृष्टि और जो मूल्य हैं, उनको देखा करती हूँ। कर्नल ओल्कोट का 'leaves of the diary' मादाम ब्लॅवेट्स्की का 'Secret Doctrine', 'Isis unveiled' अनेक ग्रंथ हैं। जिस Secret Doctrine का आधार लेकर उत्तरवृन्दावनवासी

कृष्णप्रेम ने अपने ग्रन्थ लिखे, उनमें से प्रकाश पाया, तो ब्रह्मविद्या की आराधना की तरफ़ सारे संसार का ध्यान आकर्षित करनेवाली थियॉसोफिकल सोसायटी के जो सदस्य बड़ौदा में हैं, उनमें यह बुद्धि हुई।

नारायण स्वामी का भक्तवृन्द

यहाँ पंचधाराओं का संगम हुआ है परमहंस अवधूत, रंग अवधूत के चरणों में – उनकी भूमि पर। आप देखिए, यह संगम बड़ा मधुर है। यहाँ कृपा करके नारायण स्वामी का भक्त-मण्डल आया है। अब आप चलें मेरे साथ १९६७ के वर्ष में, जब नारायण-आश्रम गई थी। नारायण के सदेह दर्शन मुझे नहीं हुए थे; लेकिन हम सवा महीने तक वहाँ रहे थे।

एक नवयुवक, जिसका शिक्षण पूरा हुआ है। उसकी आँखें बहुत खराब हैं। सबसे अधिक नंबर का चश्मा लगा हुआ हैं आँख पर। चला जाता है गंगा-किनारे गंगोत्री में और गंगाजी के जल की तरफ़ दृष्टि लगाकर बैठता है रोज़। एक दिन चश्मा गंगाजी में गिर गया। कोई होता दूसरा तो उसको अनर्थ समझता; क्योंकि चश्मे के बिना एक फीट या दो फीट का अन्तर भी वह देख नहीं पाता था। घटनाओं में छिपे संकेत प्रभु के प्रेमपत्र होते हैं। युवक नारायण ने पहचान लिया कि गंगामाता ने चश्मा ले लिया, इसका मतलब यह है कि मेरी दृष्टि सुधरनेवाली है और हररोज गंगाजल को देखते हुए बैठता। उसका अत्यन्त रोमांचक जीवन है। उसके विस्तार में मैं नही जाऊँगी; लेकिन प्रभुनाम में मस्त, चौबीस घण्टे देहभान में नहीं, वे भावकाया में ही रहते थे। स्थूल देह में रहते ही न थे।

मैंने तो उनके दर्शन भी नहीं पाये, लेकिन जिन्होंने उनका भजनानन्द पाया होगा, वे जानते होंगे कि किस प्रकार भावावस्थित जीवन था उनका; लेकिन वह भाव मानवीय जीवन से विमुख नहीं था। नारायणनगर में स्वामीजी का बनाया हुआ हाईस्कूल और कॉलेज देखा। गाँधीजी, रामकृष्ण परमहंस और ईशु ख्रिस्त – ये तीन उनके जीवन के प्रेरणा स्रोत हैं, ऐसा मैंने सुना है और पढ़ा है। 'बापू कॉलेज' खोला है, शिक्षण की व्यवस्था करने के लिए हिमालय मे ९००० फीट ऊँचे। वहाँ जायें तो इन्जिनियरिंग, कला, विज्ञान का चमत्कार देखने को मिलेगा। मंदिर बाँधने के लिए काम करने के लिए, जो मज़दूर आते, उनके बीच भजन गाते। 'शराब छोड़ोगे, मांसाहार छोड़ोगे

तो तुम्हारे गाँव में स्कूल खुलेगा।' कितने ही गाँवों में उन्होंने विद्यालय खोले। आयुर्वेद का औषधालय स्थापित किया। संगीत-शिक्षण की भी व्यवस्था की। पहाड़ी लोगों को शाकाहारी भोजन कैसे बनाना, इसके संस्कार दिये। फलों के कैसे बाग बनाना यह भी सिखाया। गोशाला बनाई। गोपालन सिखाया। मधुमक्खी–पालन सिखाया। फिर भी कहीं उनकी भक्ति में, भावावस्था में, उनके आनन्द में उससे बाधा नहीं पड़ी। भक्ति तो उनकी रग-रग मे थी। वे जहाँ जाते, आनन्द का और भजनानन्द का एक सागर बह उठता या एक जलप्रपात-सा बह उठता। ऐसे थे नारायण स्वामी। आज भी जायेंगे तो 'नारायण'! 'नारायण'! 'नारायण'! से पहाड़ियाँ गूँज उठती हैं। मैं इतने थोड़े समय में अधिक वर्णन नहीं कर पाऊँगी; लेकिन ऐसे प्रभुपरायण, प्रभु में अलमस्त, मानवनिष्ठ और मानवीय जीवन के अभ्युत्थान के लिए रातदिन सेवा करनेवाले एक महापुरुष के भक्त यहाँ आये, शिविर के नियोजकों में, निमन्त्रकों में शामिल हुए, यह देखकर जो धन्यता होती है, उसका किन शब्दों में वर्णन करूँ ? उस समय तो मोटरें नहीं थीं वहाँ। हमारे नारायण अलमोड़ा से निकलते और नारायण आश्रम तक पैदल चले जाते। उनका चलना बड़ा अजीब था, लोग दौड़ते तो भी पहुँच नहीं पाते। हृष्टपुष्ट देह, गौर वर्ण, मुग्धकारी लावण्य ! देखते ही रह जायें। 'ज्ञानमुद्राय कृष्णाय नमोनमः' कहते हैं वैसे 'भावमुद्राय नारायणाय नमोनमः।'

श्रीअरविन्द के साधक-गण

खैर ! यहाँ शामिल हुए हैं श्रीअरविन्द के भक्त। श्रीअरविन्द तो युग-पुरुष थे। मेरा सौभाग्य या दुर्भाग्य कहिए कि उनके भी दर्शन मुझे नहीं हुए। बहुत मुश्किल से एकाध बार गाँधीजी को पाँच-दस मिनट के लिए देखने को मिला था।

श्रीअरविन्द का अध्ययन इंग्लैण्ड में हुआ। प्रखर विद्वान्, मेधावी, प्रतिभा-सम्पन्न, अभिजात कवि ऐसे श्रीअरविन्द को बड़ौदा लाते हैं महाराजा सयाजीराव। वहाँ उनको पढ़ाते हैं। पढ़ते-पढ़ते उनका लेले साहब से परिचय होता है; लेकिन योगासन-प्राणायाम में वे कहाँ रुकनेवाले थे? बंगाल की पुकार आयी, तो वहाँ चले जाते हैं। वहाँ सिस्टर निवेदिता से मिलाप होता है। अध्यात्म-साधना भी चलती है और देशसेवा भी चलती है। 'युगान्तर'

मार्फ़त उन्होंने देश की किस प्रकार मौलिक सेवा की है ! जेल में जाते हैं, वहाँ भगवान वासुदेव का साक्षात्कार होता है। चल पड़ते हैं पोंडिचेरी की ओर। सामुदायिक मुक्ति का एक उद्‌घोष पोंडिचेरी में बैठकर करते हैं। फिर वह वेदों के विषय हों, वह 'Life Divine' का ग्रन्थ हो, मृत्यु का रहस्य उद्‌घाटित करनेवाला 'सावित्री' महाकाव्य हो, महर्षि अरविन्द ने साहित्य में -- आध्यात्मिक साहित्य में और काव्य में शिक्षक के नाते क्या क्या नहीं किया, यही कहना मुश्किल है। तो ऐसे महापुरुष के जो भक्त और प्रेमी यहाँ आये होंगे, उनको भी मेरा वन्दन है।

सर्वोदय कार्यकर

यहाँ सर्वोदय कार्यकर्ता भी आये हैं। सर्वोदय के पीछे प्रेरणा भी महात्मा गाँधी की। भारतीय संस्कृति के परमोज्ज्वल मानव-रत्न थे वे। परम भागवत, परम सत्यशोधक। बैठे थे दक्षिण अफ्रिका में। सवाल खड़े होते हैं अध्यात्म साधना के। रायचन्दभाई को पत्र लिखकर भेजते हैं – एक नहीं, दो नहीं, बहत्तर प्रश्न ! जवाब आते हैं और मन में कुछ भूकंप–भूचाल जैसा होता है और भारत आकर महापुरुष जुट जाते हैं सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक जीवन में। सबका spiritualisation करने जुट पड़े। उनके गुरु गोखले ने कहा था -- spiritualisation of Politics. पर गाँधीजी तो humanisation of human being and spiritualisation of not only politics but socio- economic, political, cultural, educational – all spheres of life. – उसमें ऐसे लगे कि जीवन का एक भी क्षेत्र अछूता न रहा। नाम लिया सत्य का, अहिंसा का – जिन व्रतों को आज आश्रमवासी बोलते हैं; लेकिन महात्मा गाँधीजी की जीवनसाधना कितनी विराट बनी कि उसके लिए सारा विश्व कम पड़ा। उसी धारा को आगे चलाने के लिए आये संत विनोबाजी। परम एकान्तप्रिय और मौनप्रिय व्यक्ति। दुनिया के इतिहास में ऐसी विभूतियाँ देखने को नहीं मिलती हैं। पचीस भाषाओं के विद्वान्, सभी धर्मों का ज्ञान। उनका अध्ययन भी, ग्रन्थ भी लिखे हैं उस पर और ऐसे व्यक्ति एक-दो नहीं, पूरे चौदह साल तक भारत के गाँवों में घूमते रहे। पैदल यात्रा !

उस यात्रा में हमने देखा है, रोज का दो बजे का उठना। ढाई बजे से

साढ़े तीन तक प्रभातियाँ गाना। कभी वेदमन्त्र गाना। साढ़े तीन बजे हम सब लोग प्रार्थना में शामिल होते। चल पड़ते कभी कभी दस मील, कभी बीस मील तक। विनोबाजी को चलना पड़ा है – वर्षा में, शीतकाल में। पीरपंजाल पार करते हुए १५००० फीट चढ़ते हुए जिन्होंने देखा होगा ! एक करुणा की धारा बह उठी थी इस देश में और मार्ग दिखाया उन्होंने कि सामाजिक, आर्थिक क्रान्ति लाने के लिए हिंसा का मार्ग पकड़ने की ज़रूरत नहीं है। मार्क्स, लेनिन और माओ से भी आगे का रास्ता उन्होंने दुनिया को दिखा दिया।

हम गाँधीजी और विनोबाजी की जो शिक्षा-दीक्षा है उसको जी नहीं पाये। इसमें न गाँधीजी का दोष है, न विनोबाजी का; लेकिन इतना याद रखें कि ये महापुरुष मरना नहीं जानते हैं। गाँधीजी की मृत्यु हो गई, ऐसे भ्रम में भारत के बहुत सारे लोग भले ही पड़े हों; लेकिन वे मरना जानते ही नहीं हैं।

मैंने काम किया है मार्टिन ल्यूथर के साथ अमेरिका में। अलाबा, मोन्टेगोमरी स्टेट में, जहाँ anti-segregation movement उन्होंने वर्षों तक अहिंसा से चलाई। वे कहते, "Gandhi, my father!" कौंडा को मैंने world peace brigade में काम करते देखा है। रेवरन्ड, माइकल स्कोट, कौण्डा, मार्टिन ल्यूथर किंग, डोनाल्ड ग्रूम – ऐसे चार-पाँच व्यक्ति हम world peace brigade में काम करते थे। ज़माना हो गया। पिछले जन्म की-सी बात लगती है; लेकिन गाँधीजी वहाँ जी रहे थे। ये कौण्डा जी रहे थे और अभी अभी मैं आसाम गई थी, तो वहाँ देखा कि वहाँ भी गाँधी जी रहे हैं। आप गाँधीजी से बच नहीं पायेंगे। ये छोटे-छोटे बच्चे चौदह, उन्नीस साल के, जो 'आसू' – ऑल आसाम स्टुडन्ट्स युनियन की मार्फ़त एक जन-आन्दोलन चला रहे हैं आसाम में, वहाँ गाँधीजी फिर से जीवित हो गये हैं। आन्दोलन देखने के बाद, उसका अध्ययन करने के बाद मैं कह रही हूँ। सोलह महीनों तक आन्दोलन की ओर से, उनके नेताओं की ओर से हिंसा नहीं हुई हैं। जहाँ कहीं दूसरे लोगों ने षड्यंत्र करके हिंसा कराई, उसका उन्होंने निषेध किया। इसलिए उन बच्चों को मैं कह आई, "My children, I have come to bless you, the rest of the India is busy with dead Gandhiji and you are busy with bringing him back to life."

ऐसे गांधीजी और विनोबाजी की जीवनधारा और जीवनकार्य को अपनी शक्ति के अनुसार जो चलाना चाहते हैं, ऐसे सर्वोदय कार्यकर्ता भी निमन्त्रकों में शामिल हैं, इसलिए मुझे बहुत आनन्द होता है।

जब तक मनुष्य को आप केवल हाड़मांस का पुतला समझ कर, मानवसेवा को केवल अन्न, वस्त्र और आच्छादन की व्यवस्था करना– यही समझेंगे तब तक यह दुनिया जो है शान्ति, समता, प्रेम, सहयोग का रास्ता चुन नहीं पाएगी। मनुष्य केवल हाड़मांस का पुतला नहीं है रे ! मनुष्य केवल विचार–विकारों का पुंज नहीं है। मनुष्य का सत्त्व आत्मसत्ता में, भगवद्सत्ता में है। Man is potentially Divine और वह जो Divinity है, आत्मसत्ता है, उसको प्रकट करने के लिए मनुष्य को जन्म मिला है। उसको प्रकट करने लायक समाज-रचना, अर्थ-रचना, राज्यव्यवस्था बनाना यह उसका धर्म है, यह बात समाज से कहनी होगी।

पाँचवीं धारा श्री रङ्ग अवधूत की

मैंने चार धाराओं का वर्णन किया है और पाँचवीं धारा तो अवधूतजी की यहाँ है, जिनके दर्शन भी मुझे हो नहीं पाये थे। जो हुए हैं वे उनकी अक्षरकाया है, वाङ्मयी काया है; उसीके दर्शन हुए है। लेकिन 'अयमात्मा ब्रह्म' के प्रत्यय में सदा निमग्न रहनेवाले और यह जो द्वैतमुक्त अवस्था है जीवन की, उसमें मानव को रहना चाहिए ऐसा उद्घोष करनेवाले वे थे। आप लोगों ने उनका साहित्य देखा होगा, यहाँ से आप घर ले जाकर पढेंगे, ऐसा मैं मानती हूँ; लेकिन इस अवधूत आश्रम में यह शिविर हो, यह पता नहीं कैसी प्रभु की कृपा है। जिनका सब कल्मष धुल गया है, वे अवधूत किस अवस्था में रहते हैं, पता है ? सहजावस्था में। ''सहज सहज सब कोई कहे, सहज हुए नहीं कोय।'' कबीर महाराज कहते हैं। यह सहजावस्था जो है, वह आपकी मुक्तावस्था से आगे है। निर्वाण से आगे है। निर्ग्रन्थ्य अवस्था से आगे है। जहाँ हमें ब्रह्मस्वरूप होनेका भाव भी नहीं रहता है। 'अहं ब्रह्मास्मि' का भान और भाव भी, शक्कर पानी में घुल जाय इस प्रकार ब्रह्मसत्ता में घुल जाता है, यह अवधूत अवस्था है।

वह निर्धूत-कल्मष अवस्था अपने देह में जी गये होंगे और जिन्होंने उनके दर्शन किये होंगे, वे भी धन्य हैं। तो रंग अवधूत के शिष्य–भक्त

न इसमें केवल शामिल रहे, बल्कि व्यवस्थापकों में रहे, श्रोताओं में रहे, निमन्त्रकों में रहे – अब बताइये, इससे अधिक मैं माँगने जाती, तो भी मुझे नहीं मिलता।

इन पंचधाराओं का जो संगम यहाँ हुआ – इस सिद्धभूमि में - यह तो सोचते भी, तो ऐसी योजना बन नहीं पाती और बन गई। भारतवर्ष के कोने-कोने में ऐसे संत, ऐसे आत्मानुभवी लोग हैं; लेकिन ये धाराएँ अपनी पृथक्ता में और exclusiveness में जो उलझ गई हैं, उनको अपने Areas of agreement (सहमतिक्षेत्र) खोजकर, कहाँ सहमति है, कहाँ उनके मूलभूत अधिष्ठान एक हैं, यह खोजकर अब एक जगह आना होगा। बीच-बीच में मिलना होगा। साधना कौन किस पन्थ से करता है, यह उसका व्यक्तिगत सवाल है। कोई ascent of matter and descent of the Divine या supramental consciousness की बात करेगा। कोई परम अनुग्रह की बात करेगा। कोई परम संन्यास की बात करेगा। कोई ब्राह्मीदशा की आराधना की बात करेगा और विनोबाजी भी उसी ब्राह्मीदशा की बात कर रहे हैं।

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥

यह ब्रह्मविद्या और मधुविद्या की उपासना कोई विनोबाजी-निर्दिष्ट मार्ग से करे, कोई महर्षि अरविन्द के दिखाये हुए मार्ग से करे और कोई मैडम ब्लेवेट्स्की और मादाम एनी बेसेन्ट, लेडबीटर, कर्नल ऑल्कॉट–ये सब जो अतिरथी–महारथी हो गये हैं; उनके दिखाये मार्ग से चले, वह नितान्त व्यक्तिगत है। आप अपने संस्कारों के अनुसार जहाँ खड़े हों, वहीं आपको Point of contact with Divinity (दिव्यता से सम्पर्क बिन्दु) मिल जाता है। जिस बिन्दु पर आपको सम्पर्क मिलता है, वहाँ करें। सवाल यह महत्त्व का नहीं कि आप कहाँ थे और कहाँ से शुरू किया? सवाल यह है कि सबके पहुँचने की दिशा एक है या नहीं? गन्तव्यस्थान एक है या नहीं?

अध्यात्म मानवविमुख न बने, जीवन अधोमुख न बने; जीवन का, जन्म का, मृत्यु का स्वीकार करने की हिम्मत और ताक़त, आपत्ति–विपत्ति, अवसरों का स्वीकार, सम्मान–अपमान का स्वीकार, सुख–दुःख का स्वीकार

और उसको पचाकर आगे जाना Marching through the corridors of duality without getting stuck up in pleasure, pain, humiliation – यह जो वीरता है, उस वीरता को लेकर चलना है और जन्म–मृत्यु के पड़दे के पीछे जो रहस्य छिपा है, उसको देखना है। बस, इतना यदि सबका समान हो – दृष्टिबिंदु और दिशा – तो अपनी अपनी साधना भले न अपने अपने रास्ते से करते रहें।

यह जो पंचधाराओं का परस्पर अभिमुखता का एक दिव्य पर्व यहाँ हुआ, पंचधाराओं के परस्पर योग का जो एक संगीत मैं पाँच दिनों से सुन रही हूँ, बताइए, आप धन्य हैं कि मैं धन्य हूँ। मैंने ज्यादा सुना है आपसे। आपके श्रोतृत्व से मैंने यह सुना है और आपकी श्रवण करने की जो तत्परता है, इसमें मैंने भारतवर्ष के भावी उज्जवल भाग्य के इशारे देखे।

आप समझते होंगे – यहाँ सिद्धपीठ में – छोटे-से नारेश्वर में हम बैठे हैं। मैं छोटे-से स्थान में बैठती ही नहीं हूँ। मैं विश्व में ही बैठती हूँ, जहाँ भी जाऊँ वहाँ। मैं भारतीयों से बात नहीं कर रही हूँ। मैं गुजरातियों से बात नहीं कर रही हूँ; मैं मनुष्य से बोल रही हूँ; जो कल का विधाता है। कल को बनानेवाला विधाता है, उस मानव से बात करती हूँ। छोटे में हम क्या बैठेंगे और छोटे से क्या बोलेंगे? यहाँ कोई अदना है ही नहीं। सब महान् हैं। हम अपने आपको 'महान' कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कर रहे हैं। पाँच हजार वर्ष पहले वासुदेव श्रीकृष्ण कह गये थे – 'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।' और अणु-अणु में व्याप्त हैं वासुदेव।

वासनाद् वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयम् ।
सर्वभूतनिवासोऽसि वासुदेव नमोऽस्तु ते॥

आप शब्दों के साथ ज़रा दोस्ती कीजिए। शब्दों के अर्थों की छटाओं को ज़रा देखेंगे, तो पता चलेगा राम और वासुदेव के अर्थ का।

एक राम दशरथ का बेटा।
दूजा राम घटघट में बैठा॥
तीजे राम का सकल पसारा।
चौथा राम है सब से न्यारा॥

यह कहनेवाले रामभक्त भी बहादुर होंगे कि नहीं। वह जो वासुदेव

हैं, उनका नाम वसुदेव-पुत्र को मिला यह कहनेवाले भी बहादुर होंगे कि नहीं? अरे! भक्ति करनेवालों को जब अद्वैत का अधिष्ठान मिलेगा, एक ख़ुमारी उनमें पैदा होगी। एक शक्तिसम्पन्नता, एक शूरता, वीरता पैदा होगी।

आज भारत कायरों का देश हो गया है। मैं अध्यात्म के नाम से इन कायरों को कहना चाहती हूँ - कायरता छोड़ो। अरे, किसकी सन्तान हैं हम! ज़रा याद तो करो। हम सब भारतीय हैं। वेदों, उपनिषदों, श्रीमद्भगवद्गीता, भागवत, रामायण, अध्यात्म-रामायण, वाल्मीकि-रामायण, तुलसी-रामायण, कम्बरामायण, भागवत की कितनी टीकाएँ हैं। उड़ीसा में जगन्नाथदास ने भागवत पर टीका लिखी है। महाराष्ट्र में एकनाथ महाराज ने लिखी हैं। जहाँ भी आप जायेंगे, आपको कुछ न कुछ प्रसादी ज़रूर मिलेगी। यहाँ के अध्यात्म के जीवनमूल्य, जीवनदृष्टि, और पश्चिम से आई हुई विज्ञान, यन्त्रविज्ञान की सम्पन्नता और उनका समन्वय करने की जिम्मेदारी आप पर और हम पर है।

मानवभूमिका पर ही प्रश्न हल होंगे

तो कायरता और भय से ग्रस्त आज का जनमानस है और अपनी कायरता में से - भयग्रस्तता में से प्रश्नों के हल खोज रहे हैं। राजनैतिक या आर्थिक या सामाजिक प्रश्न आज जो भी हैं, उनके हल राजनैतिक, आर्थिक या सामाजिक स्तर पर मिलनेवाले नहीं हैं। मनुष्य मनुष्य बनेगा, पशुता की ओर अपने आपको घसीटता हुआ चला जा रहा है, वह रुक जायेगा। 'मैं मनुष्य हूँ' इस मनुष्यता की गरिमा और गौरव को समझेगा। अपना सत्त्व परम भगवती सत्ता में, आत्मसत्ता में समझेगा, अपने स्वरूप को समझेगा, तब कहीं उठकर खड़ा होगा। धर्म और अध्यात्म मनुष्यों के लिए हैं, पशुओं के लिए नहीं। पशुओं के लिए नीति भी नहीं है और समाज भी मनुष्यों का बनता है। हम तो समाज में से झुण्डशाही, जूथशाही बनाते चले जा रहे हैं। समाज में सहजीवन की जिम्मेदारी प्रत्येक व्यक्ति पर आती है। यह आत्मसंयम की शक्ति कानून नहीं सिखा सकता। मेरे मित्रो! आत्मसंयम की शक्ति, जिम्मेदारी का भान बन्दूक नहीं जगा सकती है। यह जगा सकेगी आत्मसाधना।

व्यक्ति-केन्द्रित क्रान्ति : समग्रता में जीना सीखो

आनेवाली समाज-क्रान्ति के, आध्यात्मिक क्रान्ति के केन्द्र संस्थाओं में,

संगठनों में नहीं होंगे, वे तो परिवारों में होंगे, व्यक्तियों के जीवन में होंगे। इसलिए ऐसे छोटे-छोटे शिविरों में मैं जाती हूँ और जितना जीवन शब्दों में भरकर, शब्दों की प्यालियों में भरकर पिला सकती हूँ, इतना पिलाने की कोशिश करती हूँ।

इस सिद्धभूमि में, पंचधाराओं के संगम पर, आप सबके साथ बैठने का अवसर मिला। आपसे बहुत बातें की। अब वापस जाने का समय है, जायेंगे। पर यदि यह मान लिया कि हम अध्यात्म-साधक हैं, हमें समाज से क्या? हमें मनुष्यों के सुख-दुःख से क्या? तो यहाँ आना व्यर्थ होगा। आशा करती हूँ कि वापस जाने के बाद एक बात आपके ध्यान में आयेगी कि जीवन जो है वह समग्रता में है। वह एक अविभाज्य, अखण्ड, एकरस सत्ता है। Life is a wholeness, nonfragmentable, non-divisible, homogenious wholeness. उसमें हम सब रहते हैं। हम नहीं कह पायेंगे कि इससे हमारा क्या सम्बन्ध? उससे हमारा क्या सम्बन्ध? अपने जो सम्बन्ध है, उन सम्बन्धों में से स्वायत्तता से गुज़र जाना। निसर्ग के साथ सम्बन्ध है, पशुओं के साथ सम्बन्ध है, व्यक्तियों के सम्बन्ध है, उन सम्बन्धों में से गुज़र जाना है।

आन्तरिक समता : बाह्य सन्तुलन

कैसे गुज़रना है इन सम्बन्धों में से? भीतर चित्त की समता हो और बाहर व्यवहार में सन्तुलन हो। योग का सार दो शब्दों में आयेगा – आन्तरिक समता और बाह्य सन्तुलन। 'अर्जुना ! समत्व चिताचे हेचि सार योगाचे।' ज्ञानेश्वरी में बाल सन्त ज्ञानेश्वर कहते हैं – अर्जुन ! तुझे यदि योग का सार समझना है, तो चित्त की समता और बाहर सन्तुलित व्यवहार में उसकी निष्पत्ति, यही उसका सार समझ ले।

चित्त की समता कैसे आयेगी? हमारे जीवन में आज पदार्थों से सम्बन्ध है और पदार्थ धारण करनेवाली जो शून्यता है, उससे हमारा सम्बन्ध नहीं है। हमारा जीवन के साथ एकांगी सम्बन्ध है इसलिए बाह्याचार में सन्तुलन नहीं है, भीतर समता नहीं, वैषम्य है। विचार–विकार का उठना ही वैषम्य दशा को प्राप्त होता है। चित्त की समता और बाह्याचार में सन्तुलन प्राप्त करने के लिए एक ही उपाय है। In life, to live is to

be related. Life is relationship. सम्बन्धों में जीवन की सत्ता है। Isolation में नहीं – अकेलेपन में नहीं। यह समझ लेंगे तो हमारी विमुखता चली जाएगी। इन सम्बन्धों में से गुज़रना हैं। आज केवल पदार्थ के साथ सम्बन्ध है, अवकाश के साथ नहीं है, तो अभ्यास करें और इन्द्रियों को शिक्षण दें कि वे अवकाश के साथ जी सकें।

मौन में तदाकार

अवकाश के साथ जीने का अभ्यास कैसे करें? आकाशदर्शन किया करें सुबह-शाम। आपको फुर्सत मिले तो पदार्थ पर नज़र डालकर रुकें नहीं, बीच में जो आकाश है उसे देखें। सूर्योदय से पहले और रात्रि में आकाशदर्शन करेंगे, तो अवकाश के साथ सम्बन्ध हो जायेगा। A living organic contact and relationship with the space; क्योंकि जो है केवल उसको जानने से काम नहीं चलता, उसके साथ जीना पड़ता है। उसके साथ जीयेंगे तभी शक्ति बढ़ेगी। केवल जान लेने से शक्ति नहीं बढ़ती। जानने से तो स्मृति सम्पन्न बनती है; लेकिन जीवन दरिद्र बन जाता है। इसलिए सन्तुलन लाने के लिए पदार्थों के साथ जितना सावधान होकर जी सकें, जीयें। शब्द के साथ जीना तो हमें शतकों से, हजारों वर्षों से सिखाया गया है। अब जो सत्य है, मौन नामका - उसके साथ जीयें। Silence as a substance of our being and the substance of cosmic being. मौन करें नहीं, मौनमय हो जायँ। मौन के साथ एक हो जायँ। तो सन्तुलन लाने के लिए पदार्थों का संग है, वैसे अवकाश का संग करें। शब्द का संग है, वैसे मौन का संग करें। मन की गति का संग निरन्तर है। मन की गतियों को समेटकर जो उन्मनी है, उसका संग करें, तो सन्तुलन अपने आप आ जायेगा। आज सन्तुलन नहीं है; क्योंकि व्यक्ति एकांगी है। जो विकास हुआ है, वह भी एकाङ्गी है। जीवन में बुद्धि का बहुत संग किया है और बुद्धि और मन का संग करते करते जीते चले जा रहे हैं। बुद्धि जहाँ शरणागत होकर बैठेगी कि यह मेरी समझ में नहीं आता, वह मेरी समझ में नहीं आता। तब–''आप उसे समझा दीजिए 'जीवन-विभु! जीवन-प्रभु!' इस प्रकार बुद्धि अपनी पराकाष्ठा, अपनी सीमा - परिसीमा को पहचानकर शरणागत होकर बैठे। मन की

गतियों को समेट लेना है, शब्दों का किनारा छोड़ देना है और पदार्थों का संग छोड़कर अवकाश का संग करना सीखना है। यह चतु:सूत्र यदि ध्यान में रहे, तो इस शिविर की जो निष्पत्ति है, वह आपके ध्यान में आयेगी। एक नया सन्तुलन आयेगा जीवन में।

यह कब करें? कैसे करें? आपका जैसा जीवन-व्यवसाय। आपकी जैसी अवस्था, जीवन की जैसी जिम्मेदारियाँ। उसमें से जितनी फुर्सत मिलती है वह निकालिए। मन पर बोझ न रखें। सहजता से ही सब करते चलें, नहीं तो एक नया संघर्ष भीतर पैदा करेंगे। इतना करना है और समय नहीं मिलता है; इतने–उतने में न पड़िये। जितना मिलता है उससे लाभ उठाते चलें। The revolution through leisure. फ्रांस के क्रांतिकारियों को बड़ी चिन्ता होती थी कि हमारे जीवनसंघर्ष में आर्थिक तनाव–दबाव में हम क्रान्ति कैसे करेंगे? वहाँके श्रमित–दलित वर्ग को क्रान्ति का संदेश देनेवाले ने क्या कहा? 'देखो, फुर्सत का जितना समय है, उतना क्रान्ति को दे दो।' वैसे मैं कहती हूँ, 'आध्यात्मिक अभ्युदय के लिए जितना फुर्सत का समय है, वह दे दीजिये। गपशप में समय न खोइये। नहीं तो कुत्ते की पूँछ और आदमी की जबान हिलती ही रहती है। वह चुप रहती ही नहीं है एक जगह। तो एक भी अनावश्यक शब्द नहीं, वार्तालाप नहीं, आत्मश्लाघा नहीं, परनिंदा नहीं। एक अत्यन्त सस्ता कुतूहल भी नहीं, लोगों के जीवन के लिए। एक–एक क्षण मिलेगा, आप देखेंगे कितना समय मिलता है ! नौकरी करनेवाले, व्यवसाय करनेवाले सबको समय मिल सकता है। जब इच्छा होगी, समय मिल जायेगा। रोज-रोज आपकी गोद में, आपके हाथ में ये चौबीस घण्टों के चौबीस हीरे प्रभु रख देते हैं। प्रभात हुआ न हुआ कि आपके दामन में ये चौबीस रत्न देते हैं प्रभु – ये चौबीस घण्टे जो हैं; तो उनको व्यर्थ खोना नहीं है। एक–एक पल का उपयोग करें। जब फुर्सत मिली -- पाँच मिनट, दो मिनट, एक मिनट ! – अरे ! ये दो–तीन–पाँच आपकी गिनती है। सनातन शाश्वती के हिसाब से तो केवल शाश्वती ही है।'

कालातीत–स्थलातीत को पहचानें

किसीने वहाँ तरंग देखे -- दूर-दूर से नर्मदाजी के, गंगाजी के, जमनाजी

के, कृष्णा के, कावेरी के, तापी के। उसको लगा, तरंग बड़े सुन्दर चमक रहे हैं। सूर्य की रश्मियाँ उस पर नाच रही हैं। उसने सोचा - 'जरा मुट्ठी-भर तरंग घर ले जाऊँ, बच्चों को दिखाने के लिए।' वह तरंग लेने गया और हाथ में आया जल ! आप मिनट, दो मिनट गिनने जाते हैं; लेकिन हाथ में आती है जीवन की अमरता – शाश्वती। The Eternity contained in the minute, so called moment – 'क्षण' – उसको तो आपने मान लिया है। जीवन तो मानातीत है; जीवन तो कल्पनातीत है, गणनातीत है। इसलिए दो मिनट मिलता है, पाँच मिनट मिलता है, इसकी चिन्ता न करें। वह तो मानवीय व्यवहार के लिए घड़ियाँ बाँधते हैं, उसकी चिन्ता न करें। लोगों को लगता है दस-बारह मिनट बैठने से क्या होगा ? ऐसा नहीं होता है रे ! उत्कटता से दिया हुआ एक पल काफ़ी है।

अखण्ड क्षण

अभी समय हैं हमारे पास, एक घटना याद आयी। ई.स. १९६० या '६१ का जमाना होगा। उन दिनों पंडित जवाहरलालजी की तबीयत कुछ नरम रहा करती थी। आनन्दमयी माँ पंडितजी की पत्नी की गुरु थीं। इसलिए स्नेह के कारण बहुत बार पंडितजी आनन्दमयी माँ के पास आया करते थे और आपने तो जान लिया है कि मेरा और आनन्दमयी माँ का सम्बन्ध बहुत पुराना हैं। माँ ने मुझे यह कहानी सुनाई थी। पंडितजी ने कहा, ''माँ, मुझे नींद नहीं आती बराबर। कुछ उपाय बताइये। तो माँ ने कहा, ''बाबा, उपाय तो होगा; लेकिन पहले यह बताओ कि चौबीस घण्टों में से एक अखण्ड क्षण मुझे दे सकोगे ? वह अखण्डित होगा तो ही ! खण्डित बीज बोने से अंकुर नहीं आता है।' तब पंडितजी ने पूछा था, 'यह अखण्ड क्षण का मतलब क्या ?' माँ बोलीं, 'अखण्ड क्षण का मतलब है कि उस क्षण में केवल तुम रहोगे। तुम देश के प्रधानमन्त्री नहीं रहोगे और तुम काँग्रेस के नेता नहीं रहोगे। तुम इन्दिरा के पिता नहीं रहोगे। तुम केवल खाली – शून्य रहोगे। आपकी जो सब उपाधियाँ हैं – देश की, कुटुम्ब की, पार्टी की – वे सब उतारकर रख दोगे और उस समय किसी की चिन्ता नहीं करोगे, नहीं तो क्षण देने जाओगे तो आधा क्षण नहीं हुआ कि चिन्ता करोगे देश की। इसलिए खण्डित क्षण मुझे नहीं चाहिए और नियत समय पर

चाहिए। रात को बारह बजे कहो, रात को दो बजे कहो, दिन में दो बजे कहो; लेकिन बाबा मुझे देना, वह समय मुझे बतला देना। रोज़ वही समय होना चाहिए। तो पंडितजी तो पारदर्शक प्रामाणिक व्यक्ति थे। उन्होंने सोचा कि एक अखण्ड क्षण देना कोई मुश्किल बात नहीं है। वह हो जायेगा; लेकिन नियत समय कहाँ से मिलेगा? उन्होंने कहा कि समय तो मेरा अपना है नहीं। माँ ने कहा, "नहीं, निकालना पड़ेगा। एक क्षण निकालना पड़ेगा। रात को बारह बजे, दो बजे, तीन बजे, जो भी हो।" माँ कहती थीं, एक क्षण देना। "अरे! वटवृक्ष का बीज तो बाबा एक ही है; लेकिन उस एक बीज से अनन्त बीज पैदा होते हैं। जब वटवृक्ष उसमें से उगता है, निकलता है, वैसे एक क्षण तुम देना। धरती को एक कण देते हैं, वह मन बनाती है। तुम एक कण देना, उसके अनन्त कण बनाना प्रभु के हाथ में है।"

खैर! पंडितजी ने कहा, "मेरे पर इतने कामों का बोझ है, कभी ग्यारह बजे याद आयेगा, कभी दो बजे याद आयेगा, कभी दिन में याद आयेगा। जब याद आयेगा तब दूँगा। लेकिन रोज़ का नियत समय नहीं दे सकूँगा।" तो माँ ने कहा, "फिर बाबा, उपाय नहीं हो सकेगा"।

कण का मन करनेवाला बैठा है

मुझे यह प्रसंग इसलिए याद आया कि हम 'समय कैसे मिले' इसकी बात कर रहे थे। अपनी रोज़ की जीवनपद्धति में पाँच मिनट मिल जायेंगे, दस मिनट मिल जायेंगे, उसका एख अन्दाज़ कर लीजिये और जो भी आपका समय होगा दो मिनट का, पाँच मिनट का, ठीक नियत समय पर बैठ जाइये, शान्ति से। इतना यदि करते है तो जिस प्रकार कण को मनभर बना देने के लिए वसुंधरा समर्थ है, वैसे आपकी उत्कटताभरी, विरहभरी, वेदनाभरी वह 'जो बैठने की क्रिया है, यह शान्ति में बैठने का, मौन में जाने का आपका जो स्वायत्त कर्म है, उसको सँभालना प्रभु का काम है। परिणाम के कर्ता हम न बनें, हम कर्म के कर्ता बनकर सन्तोष मान लें।

इससे आगे कहना नहीं है। ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं – 'वक्ता नोहे वक्ता श्रोतेन वीण' – श्रोता न हो, श्रवण की इच्छा न हो, श्रवण की तत्परता न हो, तो कोई व्यक्ति का दम है कि वक्ता बनेगा ! तो आप लोगों के श्रवण ने मुझे वक्ता बना दिया। इस श्रवण के लिए धन्यवाद देती हूँ और हृदयपूर्वक कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

(५–२–'८१ पूर्णाहुति प्रवचन)

पूर्णिका

(साधकों के समक्ष आबू में दिये गये प्रवचन)

अध्यात्म के जीवनमूल्य और विज्ञान की सम्पन्नता का समन्वय करके राष्ट्र के भविष्य को उज्ज्वल बनाने की बातें 'अवधूत–प्रसादी' में आपने देखीं; लेकिन समाज के पिण्ड का निर्माण होता है व्यक्ति के सत्त्व से। अनार का हरेक दाना रसभरा और परिपुष्ट होगा, तभी सारे अनार की क़ीमत होगी। व्यक्ति के अंतरपिण्ड को परिपुष्ट और समृद्ध बनाने के लिए श्री विमलाताई ने आबू में साधकों के समक्ष जो प्रवचन दिये हैं, उनको यहाँ उत्तरार्ध में समा लिये हैं। आशा है कि इससे साधकों को अपने दैनिक साधनापथ में मार्गदर्शन मिलता रहेगा।

(गुजराती संस्करण से)

१. स्व-शिक्षण और शुद्धियज्ञ

मान लीजिए कि किसी व्यक्ति के जीवन में प्रभुप्राप्ति या निजरूप सिद्धि की अग्रिमता (Priority) निश्चित हो गई है, तो प्रभु की बड़ी कृपा होगी। यदि किसी व्यक्ति के चित्त में, बुद्धि में यह निर्णय हो गया कि अब मेरा शेष जीवन प्रभुप्राप्ति के लिए है, निजरूप सिद्धि के लिए है, यह निश्चय व्यक्ति की बुद्धि में हो गया; इतना हम मान लें तो चलें, अब श्रीगणेश करें। ऐसा व्यक्ति प्रभु-प्राप्ति या सहजात्मक स्वरूप के साक्षात्कार के लिए कम-से-कम नौ महीने, अधिक से अधिक सवा साल, किसी एक स्थान में स्थिर रहने का संकल्प करे। संकल्प के बिना शरीर में बल का, शक्ति का संचार नहीं होता। शुद्ध संकल्प, जिसको अंग्रेजी में आप Suggestion, auto-suggestion कहते हैं, जिसको 'निश्चय का महल' कहते हैं, ऐसा होना चाहिए। तो कम से कम नौ महीने और अधिक से अधिक सवा साल एक स्थान में रहने का संकल्प करें। ऐसा संकल्प करनेवाला व्यक्ति क्षेत्र-संन्यास लेगा, प्राण जायें तो भी सवा साल या नौ महीने तक उसी स्थान में रहेगा, हटेगा नहीं। चाहे आधि आये, व्याधि आये, उपाधि आये, संकट आये, सारी दुनिया डूब जाय, प्रलय आये; तो भी वह व्यक्ति वहाँ से हटेगा नहीं। जिज्ञासा जिनकी तीव्र है, जिनमें उत्कटता है, passion है, intensity है, खूब energy है, स्फूर्ति है, वे नौ महीने का संकल्प करें। जिनके शरीर का स्वास्थ्य बहुत अनुकूल नहीं है, मन में उत्कटता नहीं है, मंदता है, संवेदनशीलता है; लेकिन शरीर और मन धीमे चलते हैं, वे सवा साल का संकल्प करें। यह मेरी सूचना है।

एक हो गया समय का संकल्प, दूसरा हो गया स्थान का संकल्प। खोज लीजिए, जो स्थान आपको अनुकूल पड़ता हो। सवा साल के लिए आर्थिक व्यवस्था कर रखें। फिर किसी काम के लिए आर्थिक व्यवस्था के लिए चिन्ता न करनी पड़े, वहाँ से हटना न पड़े। व्यवस्था इस प्रकार करें कि उस स्थान में आपको दो जून (वक्त) खानेलायक अन्न और वस्त्र-

आच्छादन की सुविधा मिल जाय। वह बैंक की मार्फ़त करा लो या परिवार की मार्फ़त करा लो। उसके बारे में फिर सोचना न पड़े। तो समय का संकल्प हुआ, फिर स्थान का संकल्प। स्थान खोज लीजिए, जो आपको अनुकूल पड़ता हो। बारह महीने वहाँ की जलवायु अनुकूल पड़ती हो वैसा स्थान। तो यह स्थान का संकल्प हुआ। उस स्थान में क्षेत्र-संन्यास लेकर बैठेंगे। 'कार्यम् वा साधयेत् देहम् वा पातयेत्।' सिद्धार्थ गौतम ने संकल्प किया कि वृक्ष के नीचे से नहीं उठूँगा – या तो समाधि सिद्ध होगी या मेरा शरीर गिरेगा। मैं नहीं उठूँगा। संकल्प में बड़ी शक्ति होती है। वह गतिशील है, जिसमें आपको शक्ति, स्फूर्ति, प्रेरणा मिलती है।

संकल्प के बाद इन्द्रिय-संवरण

समय का संकल्प, स्थान का संकल्प हुआ और उसके लिए व्यवस्था हो गई – आयोजन हो गया। इतना यदि हो गया है, तो अब साधना यानी स्व-शिक्षण Self education का आरम्भ। यदि नदी का जल एक दिशा में जा रहा है और आपको खेत में ले जाने के लिए जल को दूसरी दिशा में ले जाना है तो क्या करोगे? नहर खोदेंगे और पानी के प्रवाह को मोड़ देंगे। खोदकर पात्र तैयार करेंगे। जल के प्रवाह के लिए और फिर जल की धारा को इस पात्र में से उधर मोड़ देंगे। यह काम करना पड़ता है न? अब हम यहाँ खोदने का काम शुरू करेंगे और शरीर में कैसे खोदेंगे? हाड़माँस में कैसे खोदेंगे? पात्र कैसे बनायें कि चितवृत्ति की धारा उसीकी ओर जाये, उसी पात्र से होकर बहे। आज तो इन्द्रियाँ दौड़ती हैं विषयों की तरफ़ – बाहर। यह उनका स्वभाव है अनेक जन्मों का। अनेक योनियों में से गुज़रते–गुज़रते इन्द्रियों का एक सहज स्वभाव बन गया है। एक आदत बन गई है कि वे बाहर ही दौड़ती हैं। अब उनको बाहर के बदले भीतर ले जाना है। एकदम बाहर से भीतर नहीं ले जा सकेंगे, वे जायेंगी ही नहीं, वापस दौड़ेंगी। इसलिए अब संकल्प के बाद संवरण का कार्यक्रम शुरू होगा।

पहले इन्द्रियों को अन्तर्मुख करो

संवरण याने संहरण कहो। संवरण यानी समेटना। अभी अन्दर नहीं जा रहे हैं। बाहर से समेट रहे हैं। बाहर जाने का प्रयोजन

कम-से-कम रहे। बाहर जाने के प्रयोजन को घटाना। बाहर जाना पड़ता है शक्तियों को, इन्द्रियों के द्वारा। किसी भी कारण से जाना पड़ता है । उन कारणों को, उन प्रयोजनों को, उन परिस्थितियों को समेट लेना। कैसे समेट लेंगे, कि अब मैं इस स्थान से नहीं हटूँगा, तो गति का संवरण हो गया। यहाँ जाऊँ, वहाँ जाऊँ -- मन सतत दौड़ता है। मन को पता चले कि सवा साल यहाँ मुझे रखा है; इस शरीर को लेकर। दुनिया चाहे डूब जाय, चाहे तैर जाय, जो होना हो सो हो, अब नहीं हटूँगा। तो गति का स्थान के साथ जो सम्बन्ध है, उसका संवरण हो गया। यह समेट लिया आपने। अब उस स्थान में रहकर भी आदमी घूम सकता है। तो वह संकल्प करेगा कि जिस कमरे में, जिस स्थान में बैठा हूँ – बैठी हूँ; कमरा है, मकान है, गुफा है – जो है, इससे बाहर अनिवार्य न हो, तो नहीं निकलूँगा। भाई, दुकान में जाना है – शाक–सब्जी लेने, ठीक है; तो मैं दो दिन की सब्जी लेकर आऊँगा। अनाज है, शक्कर है, तेल है, नमक है, गुड़ है महीने भर टिक सकता है। मैं महीने का स्टॉक रखूँ, तो बार-बार लेने के लिए जाना नहीं पड़े। आहार में शाक–सब्जी का इस ढंग से आयोजन करूँ कि मुझे रोज़ इसके लिए बाज़ार नहीं जाना पड़े; क्योंकि बाज़ार जाओगे, मकान से निकलोगे, रास्ते में लोग मिलेंगे, उनके व्यवहार दिखेंगे, चित्त उसकी प्रतिक्रिया करेगा। लोगों के साथ दुनियाभर की बातें होंगी। यहाँ क्या हुआ, वहाँ क्या होगा? यह अच्छा है, वह बुरा है; तो दृष्टि का दोष हो गया। चित्त में प्रतिक्रिया उठी और फिर वाणी संसारी बातों में लग जायेगी। ये सब अनर्थ तब टलेंगे, जब प्रयोजन कम से कम करेंगे। तो मैं मेरा स्थान छोड़कर अनिवार्य न हो, तो बाहर नहीं निकलूँगा।

स्व-शिक्षण में कोई गुरु नहीं है, जो चौबीस घण्टे टोक कर कहेगा कि देखो, तुम्हें ज़रूरत नहीं थी, तुम केवल मन बहलाने के लिए बाहर गये, तुम्हारे जीवन की आदत थी। ज़बान की आदत है, इसलिए तुम गप्पें लगा रहे थे। देखो, तुम संसारी बातें कर रहे थे। चौबीस घण्टे तुम्हारे सिर पर बैठकर तुम्हें कौन टोकेगा? अगर टोकेगा तो तुम्हें प्रिय नहीं लगेगा। छोटे बच्चे हैं, वे सीखने के लिए बहुत जल्दी तैयार होते है । बड़ों को सिखाने जायेंगे तो उनके शिक्षक को टकराना पड़ता है और व्यक्ति जितना

सीखने को तैयार हो, उतना ही तुम सिखा सकते हो। उसको तुम कुछ नहीं कह सकते हो। कहो, और दिन में दस-बार उनका अहंकार यदि घायल हो जाय, तो सीखना धरा रह जायेगा। इसलिए छोड़ देना पड़ता है, व्यक्ति के प्रारब्ध पर । 'अयोग्य है' कहो तो वह 'योग्य है' ऐसा कहेगा। आपके साथ वादविवाद करेगा। अगर आप कहेंगे, 'यह तूने ग़लत किया' तो कहेगा कि यह मेरा हेतु ही नहीं था। मैंने ऐसा कहा ही नहीं, मेरा मतलब भी ऐसा नहीं था। इतने प्रतिकार खड़े होते हैं; क्योंकि अहंकार पुष्ट है। वह अपने कर्मों का बचाव करने के लिए बैठा है, वकील बनकर। उसे सीखता ही नहीं है, सीखने का अभिनय करता है। सीखने के लिए जो विनम्रता चाहिए, वह बड़ी उम्र में बहुत मुश्किल से आती है। अब दबा-दबा कर, यह नहीं करना है, वह नहीं करना है, इस प्रकार कोई गुरु सिखाने जायेगा तो suppression-repression आ जायेगा। इसलिए स्वाधीनता देनी पड़ती है। समझाना पड़ता है। एक बार, दो बार, तीन बार; लेकिन मनाना, बहकाना, पुचकारना, लाड़ करना; या सजा करना यह बड़ों के साथ करना मुश्किल है। यह सहन करने की ताक़त बहुत कम लोगों में है। इसलिए आप आपके गुरु हैं और आप ही आपके चेले हैं। यह आ गई भूमिका।

अनिवार्य हो तब ही व्यवहार करें

इसलिए कहती हूँ कि संकल्प कर लें कि मैं घर से बाहर नहीं निकलूँगा। हाँ, मुझे घूमने जाना है, तो एक घण्टा निकलूँगा; लेकिन जब मैं घूमने जाऊँगा तो मेरा मौन होगा। ताकि कोई रास्ते में रोक-कर संसारी बातें मुझ से न करें। संसार की बिना कारण बातें, दूसरों की निन्दा, अपवाद, अफ़वाह, गपशप -- ये सभी मेरे चित्त को दूषित बनायेंगे, इसलिए बाहर निकलूँ तो मौन है। चिट्ठी दिखा दूँगा। "मेरा मौन है।" कोई बोलेगा नहीं। हाँ, दुकान में जाना है, तो बोलना पड़ेगा–दुकानदार के पास। इतनी सब्ज़ी मुझे दे दो, जितना बोलना है उतना बोलूँ । अनिवार्य हो तो बाहर निकलूँ। इस प्रकार गति का और संक्षेप हो गया। वाणी का संवरण करो, संहरण करो।

वाणी का संवरण भी अनिवार्य

गति का संवरण हो गया । अब वाणी का संवरण करें। यह वाणी भी अनर्थकारिणी बन सकती है। अशुभदायिनी भी बन सकती हैं और सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि लोग इसे मौन कहते हैं। मौन शब्द छोड़ दें । बहुत आवश्यक काम होगा तो बोलूँगा या प्रभु की, आत्मा की, परमात्मा की बातें करने के लिए मैं ज़बान खोलूँगा। मेरी ज़बान से अब सवा साल या नौ महीने कोई दूसरी बात नहीं निकलेगी। ज्ञानचर्चा होगी, सत्संग-चर्चा होगी।

शरीर के साथ कुछ घटित होता है । मौन में बैठे, नाद सुनाई दिया। मौन में प्रकाश दिखाई दिया। मौन में बैठे, शरीर काँपने लगा, वह सब मैं किसी से नहीं कहूँगा। नोटबुक में लिखकर रख दूँगा। कोई मेरे परिचित आत्मानुभवी हैं, तो उन्हें यह नोटबुक पकड़ा दूँगा कि इस पर आपका कोई सूचन है? लेकिन मैं किसी के साथ बात नहीं करूँगा। अध्यात्म-चर्चा का अर्थ यह नहीं है कि मैं मौन में बैठी थी और मेरा शरीर काँपने लगा। मैं मौन में बैठी थी और मैंने मूर्ति देखी। मनुष्य को घमण्ड हो जाता है। छोटी-छोटी घटनाएँ होती ही रहती हैं । किसी दिन भूख घट गई, किसी दिन नींद घट गई। जो भी हो, लिखकर रख दें; लेकिन उसकी चर्चा न करें, एकदूसरे के साथ; क्योंकि ऐसा करने में मन को सुख होता है। Mind takes pleasure in the experiences that occured as soon as you begin your self-education. तो वाणी दूसरा संकल्प करेगी कि मेरे साथ साधना के कारण जो अनुभूतियाँ घटित होती हैं, उनको जाहिर नहीं करूँ, उनकी advertisement नहीं करूँ, उनकी चर्चा नहीं उठाऊँ। जो होगा वह नौ महीने के बाद देखा जायगा, तब तक नहीं। तो वाणी का दूसरा विषय घट गया। नहीं तो सत्संगी इकट्ठे होते हैं, तब ऐसा हुआ, कल वैसा हुआ, रात को ऐसा हुआ – पता नहीं और क्या क्या बातें करते हैं। अरे होगा, सबको होता है। खैर ! तो वाणी का आप संवरण करेंगे कि अनिवार्य है, वहाँ वाणी का उपयोग करें; क्योंकि 'मौन करो' कहूँगी तो भार होता है चित्त पर। अरे ! हमें मौन करना पड़ेगा? 'मौन' शब्द के भार के नीचे दब जाते हैं। छोड़ दो भाई ! ऐसा करो कि अनिवार्य है तब बोलो। अनिवार्य नहीं है तब न बोलो।

व्यर्थ सुनना भी वाणीदोष

अब तुम्हारी विवेक-शक्ति पर, तुम्हारी निर्णय-शक्ति पर काम आया। अब यदि आत्मछलना करेंगे – अपने आपको ठगेंगे और ज़रूरत नहीं है तो भी बोलेंगे, तो प्रारब्ध तुम्हारा ! बड़ों के साथ साधना का प्रारम्भ करने के लिए जो सूचनाएँ देनी पड़ती है वे इसी ढंग से होंगी। वह हुक्म नहीं हो सकता, आदेश नहीं हो सकता कि भाई ! ऐसा करो। ऐसा करोगे तो ऐसा होगा।

तो एक हो गया गति को संक्षिप्त करना और समेट लेना और दूसरा हो गया वाणी को समेट लेना। वाणी को समेटने में एक पहलू और है दूसरे लोग बिना कारण आकर बोलें, तो वह नहीं सुनना। वह भी वाणी के संक्षेप में आ जायेगा । आपके पास आकर दूसरे लोग यदि बात करने लगें, निकम्मी बातें करने लगें, छोटी-छोटी क्षुद्रता की ·· इसने ऐसा किया, उसने वैसा किया – ईर्ष्या की, द्वेष की, निन्दा की निकम्मी बातें – नहीं सुननी चाहिए। हमारा जितना समय निकम्मी बातों में जाता है, इतना यदि भगवद्-भक्ति में जाय, तो साधना में काफ़ी है। लेकिन मनुष्य को आदत है, जीभ चलाते रहना, चलाते ही रहना। किसी प्रयोजन के बिना निकम्मी बातें सुनना पाप होगा। वह भी साधना में विक्षेप होगा, वह भी एक प्रत्यवाय होगा।

बाहर जाने की जो गति थी, वह जब बाहर नहीं जायेगी। अब खोदने का काम शुरू हुआ। यानी उधर जाने से आपने रोक लिया। प्रयोजनों को रोक दिया, मन को नहीं रोका। प्रयोजनों को रोका, तो प्रयोजन रहे ही नहीं। कैसे जायेगा, कारण न रहे तो क्या जायेगा। अब गति रुक गई बाहर जानेवाली; वाणी रुक गई, बिना कारण दौड़नेवाली। तीसरी बात है आहार की।

आहारशुद्धि से सत्त्वशुद्धि

आहार को लेकर मन दौड़ता है, तन दौड़ता है। यह खाऊँगा, वह नहीं खाऊँगा; यह पीऊँगा, वह नहीं पीऊँगा; मन हररोज़ ऐसा करता है। तो आहार को अपने शरीर के लिए जो अनुकूल होगा, उसको ढूँढ़ लो। एकाध सप्ताह में देख लो। अपने को क्या अनुकूल है, क्या प्रतिकूल है। चैत, वैसाख, ज्येष्ठ ये पित्त को बढ़ानेवाले महीने है। तो पित्त बढ़े नहीं, ऐसा आहार लेना चाहिए। आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद महीने ये विक्षिप्त वायु

के प्रकोप के महीने हैं तो इसमें ऐसा आहार लिया जाय जो वायु न करे। वायुशामक आहार होगा। हिन्दुस्तान की आयुर्वेदिक Terminology में बोल रही हूँ। कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष – रसिकता से आहार करने के महीने हैं। जलवायु अनुकूल है। शरदऋतुका निरभ्र आकाश है, जल-प्रवाह शुद्ध है, तो आपकी रसिकता से, आपके चित्त के अनुकूल आहार शरीर को खिलाइये, नुकसान नहीं करेगा। स्निग्ध हैं, सुपाच्य हैं, आपको जितने षड्रस खाने हैं, खा लीजिए। कार्तिक, मार्गशीर्ष, पोष; माघ तक भी थोड़ा चलेगा । फाल्गुन में मनुष्य को सावधान रहना पड़ता है। तो शरीर की अपनी अवस्था को देखकर, ऋतुओं के अनुकूल आहार नियत करो कि मैं इन नौ महीनों में जो ऋतुएँ आनेवाली हैं, उनमें शरीर को अनुकूल आहार लूँगा। तीन बार अनुकूल पड़ता है, तो दिन में तीन बार और एक ही बार अनुकूल है, तो एक बार लो। किसीके कहने से मुँह में डालोगे तो वह विक्षेप हो जाएगा; क्योंकि चित्त को आपने ढीला छोड़ दिया। अरे ! तंबूरे के तार ढीले छोड़ेंगे और कहेंगे कि तार में से संगीत निपजना चाहिए तो कैसे होगा? ऐसे शरीर की इन्द्रियों को ढील देंगे, तो जीवन का संगीत नहीं निपजता है। इसलिए आहार को नियत करें। इतना निश्चय कर लेना कि सुबह खाते हैं, तो कितने बजे खायेंगे, दोपहर को कितने बजे और शाम को कितने बजे। दिन में एक बार, दो बार, तीन बार, यह आपकी अनुकूलता का सवाल है। उसमें यह न कहना कि एक बार जो खाता है वह तपस्वी हो गया और तीन बार खाता है वह भोगी हो गया। लेकिन शुद्ध आहार और आहार का समय निश्चित कर लो। गति भी निश्चित कर लो, ताकि मन आहार के बहाने बाहर दौड़ेगा नहीं। गाँधीजी ने "मैं पाँच ही पदार्थ खाऊँगा" कहा था। आपको लगता है गाँधीजी ने ऐसा क्यों किया ? क्योंकि मन जो कल्पना करके इधर–उधर नाचता–घूमता है, उसको स्थिर करने का वह एक विधायक उपाय था, Negative नहीं था। नकारात्मक दिखता है, लेकिन है विधायक।

निद्रा भी मर्यादित

अब बात हो गई आहार की। ऐसा ही निद्रा के साथ करो। उसको ढीला छोड़ने की मर्यादा क्या है? चौबीस घण्टों में से किसी प्रकार आठ

घण्टे से अधिक निद्रा नहीं आनी चाहिए। दिन और रात्रि में मिलाकर चार घण्टे से कम निद्रा लोगे, तो विकृति पैदा होगी और आठ घण्टे से ज्यादा निद्रा लोगे तो आलस्य पैदा होगा, जड़ता पैदा होगी। अब चार और आठ घण्टे के बीच अपनी अवस्था, शरीर के जो कोई आनुवंशिक गुणदोष होंगे, उन सबको देखकर तय कर लो। रात में सात घण्टे तो दिन में आधा घण्टा। जो जिसको करना हो वह करे। यहाँ स्वाधीनता आती है, एक मर्यादित स्वाधीनता। चार और आठ के बीच जिसको जो करना है वह करे। उसमें यह नहीं कि हम पाँच घण्टे सोते हैं, तो अधिक सोते हैं। यह उनका दोष नहीं। शरीर के दोष, जाति के दोष प्रदेश के साथ लगे हुए आते हैं। अपने आप धीरे धीरे नींद घटती जायेगी, यह बात अलग है। तो एक निद्रा का भी समय नियत कर लें। जो समय नियत किया है, ठीक उसी समय पर सोने के लिए जाना। विनोबाजी आजकल छः बजे सोते हैं। ठीक सवा छः बजे सो जाते हैं और हमारे कृष्णमूर्तिजी रात को दस बजे से सुबह पाँच तक अपने शयनगृह में होंगे । एक नियत समय है उनका। पाँच बजे के बाद उनको कोई बिस्तर में नहीं देखेगा। या विनोबाजी ढाई बजे के बाद सोये हुए हैं बिस्तर में, ऐसा कोई नहीं देखेगा। वे उठकर बैंठेगे, वेद की ऋचाएँ बोलेंगे, प्रार्थनाएँ बोलेंगे, भजन बोलेंगे, महाराष्ट्र की ओवियाँ बोलेंगे। बोलते रहेंगे, बिस्तर में बैठे–बैठे। आजकल बैठ नहीं पाते हैं, तो लेटे–लेटे करते हैं। तो आहार नियत हुआ, निद्रा नियत हुई, विहार नियत हुआ। गति और वाणी की जो बाहर जाने की प्रवृत्ति थी, उसके प्रयोजनों को आपने समेट लिया। यह सब खोदने का काम है। इतना यदि किया जाय तो जब वाणी को बाहर जाना नहीं, वह अन्दर मुड़ना चाहेगी; क्योंकि ऊर्जा जो है आपके भीतर की, वह कभी पड़ी नहीं रहती है। उसको गति चाहिए, उसको काम चाहिए। यह बाहर के प्रयोजन समेट लेने के कारण भीतर मुड़ेगी। तो उसकी भीतर की गति की दिशा और उसकी चाल को भी संकल्पपूर्वक नियत करो। यह कैसे नियत करोगे ? कल जो बात कही थी कि आपको किस रास्ते से जाना है, आपके संस्कार किस रास्ते के अनुकूल हैं, यह परख लें।

त्रिपन्थी साधना : भक्ति, तप और अवधान

पैदल चलें तो आपकी गति और चाल एक प्रकार की बनेगी, बैलगाड़ी हाँकनेवाला और गाड़ी में बैठनेवाला, इनकी भी एक प्रकार की चाल है। बैलगाड़ी में बैठे हैं जिस ढंग से, उस प्रकार से घोड़े पर बैठेंगे तो नहीं चलेगा। बैठनेवाले के शरीर की पूरी गति अलग प्रकार की होगी। ऊँट पर बैठेगा तो अलग होगी और हाथी पर चढ़ेगा तो भी अलग होगी। मोटर में बैठेगा उसकी गति अलग है। जैसा वाहन वैसी शरीर के अवयवों की movements होती हैं, हलन-चलन होता है । ठीक है, तो आप कौन-सा रास्ता पकड़ते हैं, वह तय करना पड़ेगा। Whether you take the path of awareness or the path and process of purification or you take the path of devotion and dedication it is up to you - इसका निश्चय कर लेना, किस रास्ते से चलना हैं। हम इस पर भी चलेंगे, उस पर भी चलेंगे । उस पर दस कदम, पाँच कदम चहलक़दमी कर आयेंगे, इसमें टहलेंगे, इसका भी मज़ा लेंगे। यह होता नहीं है। चार रास्तों पर एक साथ नहीं चला जाता। इस पर गये दस कदम, लौट आये । तो कहीं नहीं पहुँच पाता है आदमी। याद रखो, आपको इसी भव में, इसी जन्म में कहीं पहुँचना है, प्रभु-प्राप्ति के क्षेत्र में – या अपने निजरूप के साक्षात्कार के मार्ग में – कोई एक मार्ग पकड़ो भाई ! सभी मार्ग अच्छे हैं। सभी मार्ग पर सौन्दर्य के स्थान हैं। सभी मार्गों पर मज़ा आता हैं। अलग–अलग प्रकार की घटनाएँ घटती हैं। भक्ति की मस्ती अलग है और तप की ख़ुमारी अलग है। अवधान का ऐश्वर्य उसमें भी अलग है। यह भी चाहिए, वह भी चाहिए – ऐसे लालची मत बनना। आपके संस्कार के अनुकूल कौन-सी राह है, वह निश्चित कर लेना। तो दिशा निश्चित हो गई – भक्ति की, तप की या अवधान की। जब दिशा निश्चित होगी, तब चाल का स्वरूप भी निश्चित होगा।

मनभाये रूप को नज़र में रखें

किसी के मन में आया कि मुझे 'दत्त' नाम प्रिय है। कहेंगे कि भाई, तेरे पास दत्त की छबि रहेगी। उसको रख लेना और जब कोई काम नहीं होगा, तब उसी छबि के पास बैठ जाना – तुझे जो छबि प्रिय है और उसका जो नाम प्रिय है, उस नाम को रटते रहना। देखो; दिशा निश्चित होते ही

चाल का स्वरूप निश्चित होने लगा कि इसको तो भक्ति करनी है, इसको दत्त-स्वरूप प्रिय है, इसको शिव-स्वरूप प्रिय है, इसको कृष्ण-स्वरूप प्रिय है, रखो न भाई, तुम्हारी छबि में कृष्ण है, उसने बाँसुरी पकड़ी है और वह दत्त है, उसके पास गाय खड़ी है और हाथ में कमण्डलु है। फ़र्क़ नहीं पड़ता है, परमात्मा के लिए सभी रूप समान हैं । परमात्मा दत्त भी है, कृष्ण भी है और शिव भी है और सब कुछ है, और कुछ भी नहीं है। केवल आकाश का चित्र बनाकर रखोगे, तो भी वह परमात्मा की विभूति है और कोई रूप बनाकर छबि लेकर बैठोगे तो वह भी वही है। और कुछ इस दुनिया में है नहीं। हे भाई ! और कुछ है ही नहीं। जो कुछ है, वह सभी कुछ वही है। तो ले लो छबि, फिर क्या होगा? कभी काम करते करते समय मिला या मन ज़रा बेचैन हुआ, आ गये उसके सामने; क्योंकि वह गति हैं आपकी, वह जो छबि है वह आपका destination बनी है, वह सहायक बनी है। मददगार बनी है। साथी बनी है। आयें, उसके पास बैठें, उसके नाम को रटें, उसके भजन गायें, उनके विषय में ग्रन्थ होंगे – वह पढ़ेंगे आप । इसको मैं चाल कहती हूँ कि उसी विषय में रामकृष्ण परमहंस हैं, तो उनका अध्ययन करेंगे। वह रमण महर्षि हैं, तो रमण की छबि लिये, रमण की आँखों में आँखें डालकर बैठे हैं । रमण के ग्रन्थ पढ़ेंगे और कुछ नहीं पढ़ेंगे। वे नौ महीने आपने रमण का, उस निराकार का पन्थ पकड़ लिया या रामकृष्ण का मातृ-भक्ति का पन्थ पकड़ लिया, कृष्णभक्त हैं, तो कृष्णभक्ति का पन्थ पकड़ लिया। बात स्पष्ट होती है न ? यह सगुण भक्ति का, प्यार का यदि आपने रास्ता पकड़ा, तो वह दिशा निश्चित होने के कारण आपकी साधना का स्वरूप जिसे मैंने चाल का स्वरूप कहा – वह अपने आप निश्चित होता है।

साधना को समयबंधन नहीं

कितना समय करें ? अरे ! समय का क्या पूछते हो ? ज़िन्दगी लुटाने बैठे हो, इसी जन्म में प्रभुप्राप्ति या आत्मसाक्षात्कार के लिए उसको साझीदार बनाया है – अब क्या पूछते हो ? सब समय उसका है। उसके समय में से चुराकर तुम अपने खाने-पीने के लिए व्यवस्था कर लो दो-चार घण्टे और सोने के छः-सात घण्टे। यदि आवश्यक कामों के लिए समय

निकालना है, तो उसमें से निकालो। इसमें से बचा वह उनको नहीं दे रहे हैं; आप साधना में से बचा वह इधर लगा रहे हैं। देखा ! Emphasis बदलता है। भैरव में कोमल ऋषभ लगाते हो। आसावरी मे भी कोमल रिषभ । आसावरी गाते हो तो राग का स्वरूप बदलता हैं । उसका व्यक्तित्व बदलता है । उसमें से पैदा होनेवाली भावनाएँ बदलती हैं, कोमल और शुद्ध वही पंचम है, वही निषाद है, वही धैवत, वही ऋषभ लेकिन आप शुद्ध लगाते हैं कि कोमल, इस पर राग बदलता है। उनके परिणाम बदलते हैं। वैसे आपका समय जो है वह सब साधना का समय है। इसमें से शरीर के लिए अनिवार्य है, तो मैं शरीर के लिए देता हूँ। बदल गया राग ! नहीं तो हमारे शरीर के काम में से जितना बचेगा – उधर देंगे। एक संसारी राग हो गया और एक साधक का राग हो गया। और जब वह राग बनेगा, दिनभर के व्यवहार में आपके जितने भी सम्बन्ध हैं, जितने व्यवहार हैं, वे हैं राग के आपके स्वर ! तो दिनभर जो स्वर बजेंगे आपके सम्बन्धों में तो उसीमें से संगीत बनेगा जीवन का। Every relationship is a note of music. Whatever you press in your reactions composes the music of your life.

(१९–४–८१, माउन्ट आबू)

२. शुद्धीकरण का तपोमार्ग

प्रवचन को व्यक्ति-सापेक्ष संवाद कहते हैं। विषय का प्रतिपादन करने के लिए प्रवचन नहीं है। जो सामने बैठे हैं, उनकी मदद हो इतना ही विषय रखा जाता है। प्रवचन के दो प्रकार हैं। एक व्यक्तिनिरपेक्ष विषय का प्रतिपादन – कोई समझे, न समझे तो भी विषय को आद्योपान्त रखता है। दूसरा – व्यक्ति जहाँ होगा, उसकी मदद हो सके, इतना ही विषय उसके सामने रख दें; क्योंकि सांगोपाङ्ग या आदि से अन्त तक विषय का निवेदन करें, निरूपण करें, विश्लेषण करें; तो वह धारण करने के लिए श्रोता की भी पूर्वतैयारी होनी चाहिए, अध्ययन की तैयारी होनी चाहिए, चिन्तन की तैयारी होनी चाहिए। यदि यह नहीं है तो प्रवचनों का उपयोग नहीं हो पाता। जैसे यहाँ कहा गया कि यदि परमात्मा है, ऐसी श्रद्धा जागृत हो गई – दिल में, तो उसी परमात्मा को अपने संस्कारों के अनुरूप, अपनी प्रकृति के अनुरूप किसी भी रूप में ग्रहण करें। आपको यदि व्यक्ति के रूप में ग्रहण करना है तो करो। उसको शिव या पार्वती, राधा या माधव, राम या कृष्ण, पता नहीं कितने स्वरूप हैं – दत्त या आदिनाथ ऋषभदेव, भगवान महावीर, श्रीमद् राजचन्द्र, रामकृष्ण, रमण महर्षि, कृष्णमूर्ति पता नहीं कितने है। जिस रूप में ग्रहण करना हो करो, कहना बड़ा जिम्मेदारी का काम हैं। यह विषय का प्रतिपादन नहीं है। यह आप लोगों की जरूरतों का जो ख्याल आ गया है, उन्हें ध्यान में रखकर कह रहे हैं कि भाई यह एक युक्ति है।

'साधना' एक युक्ति है अहंकारमुक्त होने की और कुछ नहीं है। साधना में कुछ नया प्राप्त नहीं करना है। जो आपके भीतर सहज उपस्थित है, सहजसिद्ध है, अनादि स्वयम्भू है उसको जानना है। उसमें जीना है। हो नहीं पाता, देर में जीना होता है। आत्मा में जीना नहीं होता तो देहभाव से, अहंभाव से मुक्ति पाने के लिए साधना है। प्राप्ति के लिए साधना नहीं है। यह मेरा जो मूल निवेदन है, आप लोगों से, पन्द्रह साल से, दस साल से, दो साल से – जानते हो, यह उसके विरोध में नहीं कह रही हूँ। लेकिन इतना कहनेमात्र से यदि आपका काम नहीं बनता है, सौ साल यही बात दोहराती रहूँ, तो भी आपका काम बने ही नहीं तो उसका क्या अर्थ ? तो आप जहाँ

खड़े हैं वहाँ नीचे उतरकर आती हूँ, घण्टेभर के लिए – भीतर से जहाँ आप खड़े हैं वहाँ तक । अच्छा इस रास्ते चलोगे, – चलो।

साधना – आत्मस्वरूप में जीना

साधना युक्ति है अहंमुक्ति की, प्राप्ति की नहीं। प्रभुप्राप्ति, आत्मप्राप्ति यह सब काव्यमय भाषा है। यह रूपकात्मक भाषा है। जो तुम स्वयं हो, उसको प्राप्त नहीं करना है। तुम यदि परमात्मा न हो, यदि आत्मा न हो, तो आत्मा को बाहर से; पानी डालते हो बाल्टी से वैसे, नहीं डालना देह में – जो है उसे पहचानना – जो है उसे जानना। यह पहचानने के बाद उसके साथ सम्बन्ध बाँधना, उसके साथ जीना, उसके बनकर जीना – यह सब क्रीड़ा है। केवल मनुष्यदेह में ही भक्ति की क्रीड़ा, आत्मरति की क्रीड़ा, तप की क्रीड़ा हो सकती है। इसलिए मनुष्य देह शुभ है–''शुभ देह मानवनो मळ्यो'' यह शुभ है। अपनी इच्छा के अनुसार, अपने संकल्पों के अनुसार, वह जो सत्ता है, वह जो परमात्मा है, उसके साथ खेल कर सकते हो।

उसे व्यक्ति के रूप में ग्रहण करके भक्ति करनी है । प्यार का रास्ता है, भावनाएँ लुटानी हैं । तो मैंने कहा कि छबि रखो, मूर्ति रखो, मन्दिर में बैठो, तीर्थस्थानों में जाओ। इस देश में तो इतनी सुविधा है कि शिवजी के तीर्थस्थान अलग हैं और कृष्ण के अलग हैं, राम के अलग हैं, देवी के अलग हैं। अरे ! रसोई में अनेक व्यंजन बनाकर खाते हो, वैसे इस देश के रसिक पूर्वजों ने स्थान बना दिये हैं । कोई यात्रा करने चला जायेगा – अपने प्यारे के स्थानों में, मनुष्य अवतार के महान पुरुषों के स्थान में जाना हो, तो रामकृष्ण जहाँ रहते थे कामारपुकुर–जयरामवाटी में–वहाँ चले गये। रमण महर्षि रहते थे वहाँ तिरुवरमल्लै – अरुणाचल में चले गये। यात्रा में सहयात्री के साथ सत्संग किया।

तो ये जो भक्ति करने के अनेक प्रकार हैं, उन प्रकारों को अपनाया जा सकता हैं। उसमें कर्म प्रधान है। जप करोगे तो वह कर्म है, पूजन–अर्चन करोगे तो वह कर्म है, भजन गाओगे तो वह कर्म है। तीर्थयात्रा करने जाओगे तो वह भी कर्म है। उस पथ के जो पथिक हैं, अधिकारी सन्त हैं, उनका सत्संग करोगे तो वह कर्म है। ग्रन्थ पढ़ोगे तो वह भी कर्म है। चित्तशुद्धि के लिए ये सब कर्म हैं। यह प्रभु की बनाई हुई दुनिया है, ऐसा समझ कर सेवा में लग

जाओगे, तो वह भी चित्तशुद्धि ही है। चित्तशुद्धि यानी जिसमें वृत्ति नहीं उठती है, वह चित्तशुद्धि है। जिसमें विचार नहीं उठते, विकार नहीं उठते। निस्पन्द जलाशय की भाँति जो है, निरभ्र आकाश की भाँति जो है, वह चित्त शुद्ध है। ऐसा बनाने के लिए भक्ति का, प्रीति का, भावना का सहारा लेकर और किसी मूर्ति की, किसी व्यक्ति की; संकल्प–कल्पना करके, आरोपण कर सकते है। परमात्मा तो ऐसा है, जो आरोप करो वह स्वीकार करता है। जिसका अध्यास करो, उसको स्वीकार कर लेता है। निराकार कहो तो निराकार, साकार कहो तो साकार। तुझे जो चाहिए वह। सगुण चाहिए तो सगुण, निर्गुण चाहिए तो निर्गुण। यह भी "मैं हूँ', वह भी 'मैं हूँ'। तो ये कर्मप्रधान भक्तिमार्ग की महत्त्व की बातें हुईं।

स्वावलम्बन के लिए आधार चाहिए

अपनी तबीयत के लिए हमें आधार, आश्रय चाहिए। पंगु बनने के लिए नहीं। जब बच्चा चल सकता है तो चालन गाड़ी हटा देता है। वह तीन पहियाँवाली गाड़ी पकड़कर तभी तक चलेगा, जब तक वह चल नहीं सकता। तो निरहंकार होने के लिए वह सत्ता, जो सर्वव्यापिनी है; सदा, सर्वत्र, सर्वथा है; वह प्रत्येक इन्द्रियों में दृढ़मूल होने के लिए आधार है। श्रद्धापूर्वक, प्रेमपूर्वक आधार ग्रहण किया, विनियोग किया, फिर आधार की आवश्यकता नहीं है, आधार छूट गया, छोड़ना नहीं पड़ता है। छोड़ना नहीं होता है। छूट गया तो छूट गया। उसकी चिन्ता नहीं। आधार लेना पड़ा उसमें शर्म की बात नहीं। इस प्रकार मुक्त-रूप से जीना है, नहीं तो अध्यात्म-साधना भाररूप बन जायेगी। जो अपने वश की बात नहीं है उसे नहीं पकड़ना। यदि आकाश का चन्द्र लेना ही है, तो हाथ में दर्पण पकड़ कर उसमें देखना पड़ता है। हाथ में दर्पण, दर्पण में चाँद का प्रतिबिम्ब – यह आया मेरे हाथ में, लेकिन हाथ में प्रतिबिम्ब आता है, बिम्ब नहीं भाई ! बुद्धि के, विचार के दर्पण में आत्मा को देखा, शब्द के दर्पण में वह प्रतिबिम्ब है रे भाई ! वह बिम्ब नहीं है। बिम्ब तुम्हारी इन्द्रियों से परे है, बिम्ब तुम्हारे माप-तोल से परे है, बिम्ब विचारों की पकड़ से परे है। तुम्हारी पकड़ में जो 'isness' आयी वह reflection है। लेकिन प्रतिबिम्ब का आधार मेरे लिए आवश्यक है, यह कहने में शर्म नहीं आनी

चाहिए। आवश्यक है तो ले लो; लेकिन वह आधार है। जन्मभर वह आधार पकड़कर चलोगे? इसका मतलब है आरोहण नहीं करना चाहते हो। आधार कब तक? कमज़ोरी होगी तो लाठी पकड़ोगे, चल नहीं सकते हो तो कुछ मदद लोगे; लेकिन मदद लेनी है चलने के लिए। आधार लेना है, आश्रित बनकर पंगु बनने के लिए नहीं, अपंगता छोड़ने के लिए । समझ रहे हैं न?

तप द्वारा शुद्धि

दूसरा मार्ग है तप का। वह भी कर्म-प्रधान मार्ग है – process of purification शुद्धीकरण की प्रक्रिया का। अब यह नहीं कहना कि क्या भक्ति करेंगे तो शुद्धि नहीं होगी? शुद्धि होगी, लेकिन वहाँ भक्ति के मार्फ़त शुद्धि हैं। प्यार से, सेवा से, भजन–पूजन–अर्चन से शुद्धि है। अब यहाँ भक्ति द्वारा शुद्धीकरण, ज्ञान द्वारा शुद्धीकरण, अवधान द्वारा शुद्धीकरण। साधना के प्रारम्भ ही अलग–अलग होते हैं। अन्त में सब एक हैं; क्योंकि सत्य एक है। किसी भी रास्ते जाओगे, पहुँचोगे एक ही स्थान पर; क्योंकि सत्य दो नहीं है। परमात्मा दो नहीं हैं । अल्लाह कहोगे, रहीम कहोगे, रहमान कहोगे, राम कहोगे, कृष्ण कहोगे, तो भी पहुँचोगे एक ही स्थान पर। यहाँ जब तक खड़े हैं वहाँ तक अलग–अलग हैं । आप खड़े हैं वह स्थान अलग है। आप खड़े हैं आपके देह में। आपके देह के संस्कार अलग हैं। राजा राम के संस्कार निरंजन के नहीं, निरंजन के मुकुन्द के नहीं। इसलिए साधना के पथ अलग बन जाते हैं; लेकिन साध्य अलग नहीं।

योगसंशोधन : भारत की अपूर्व सिद्धि

अच्छा तो चलो, शुद्धीकरण जो पन्थ है, उसे देखें। यह तप कहलाता है, तो क्या भक्ति में तप नहीं होता होगा? वह होगा। करेंगे आप भक्ति, होगा तप। करेंगे प्रीति और भक्ति, होगी शुद्धि। और जहाँ शुद्धि का पुरुषार्थ करोगे, उसमें से प्रीति निपजेगी, उसमें से भक्ति निपजेगी। तो शुद्धीकरण प्रक्रिया एक पन्थ है शुद्धीकरण का। कैसे करोगे शुद्धि? पहले स्थूल की करोगे और स्थूल की शुद्धि के लिए इस देश में हठयोग से बढ़कर और बेहतर दूसरा कोई रास्ता नहीं । आज तक दुनिया को वह नहीं मिला है। दुनियाभर के सारे वैज्ञानिक, मनोविज्ञानवाले, तनविज्ञान- वाले, ये सब हैरान हैं कि इस देश में हजारों वर्ष पहले यह योगशास्त्र का, योगविज्ञान का विकास कैसे हुआ? उसकी

समग्रता, उसकी सम्यक्ता, उसकी गहराई देखकर, पश्चिम के वैज्ञानिक आज हैरान हैं। नहीं मिल रही है इससे बेहतर उनको कोई व्यायाम की पद्धति । नहीं मिल रही है समग्र काया के शुद्धीकरण की पद्धति। इसलिए जिनको तप के रास्ते से चलना है, वह तप के रास्तेवाले योगशास्त्र को देखें। दूसरों की ओर नहीं देखना। पातंजल योगशास्त्र संस्कृत में है, उसकी गुजराती टीकाएँ है, हिन्दी टीकाएँ हैं। अंग्रेजी में भी हैं। यदि मूल संस्कृत नहीं देख सकते हो तो अनुवाद ले लेना। पूरा नहीं पढ़ना है तो 'साधनपाद' और 'समाधिपाद' तो पढ़ ही लेना। लेकिन देख लेना कि उनको क्या कहना है? एक बार देख जाना, उसमें से जितना समझ में आये उतना नोटबुक में लिख रखना। इसलिए मुनि पतञ्जलि ने जीवन का कितनी गहराई मे अभ्यास किया था, वह ध्यान में आ जाएगा। पतञ्जलि ने जो मन के विषय में कहा है, उससे आगे आज पश्चिम की psychology नहीं आ सकी, अभी वहाँ तक भी पूरी तरह नहीं पहुँची। ढूँढना, टटोलना शुरू किया और इस टटोलने में पश्चिम युरोप के देश और अमेरिका हार गये हैं पूर्व युरोपीय देशों के सामने। बल्गेरिया, रूमानिया, आल्बेनिया, युगोस्लाविया और रशिया पकड़ बैठे हैं योगशास्त्र को। योगशास्त्र का शिक्षण के साथ सम्बन्ध, योगशास्त्र का आरोग्य के साथ, बीमारियों को दूर करने के साथ, सम्बन्ध जोड़ते हैं। पश्चिम जर्मनी ने थोड़ा पकड़ा है। होलेन्ड ने भी थोड़ा-थोड़ा पकड़ना शुरू किया है उनकी चिकित्सा-पद्धति में।

पतञ्जलि का योगशास्त्र देखें

खैर ! अब तो जीवन समर्पित कर रहे हैं और यदि इस समर्पण में आपको शुद्धीकरण के रास्ते से चलना है, तो महीना-सवा महीना पूरा प्रेम होगा तो उस शर्त के साथ गहराई में उतरेंगे। सामान्य ज्ञान की दृष्टि से महीने सवा महीने में, आपकी मातृभाषा में जो भाषांतर मिलेगा, उसको एक बार देख जायें। यह शरीर क्या है, मज्जातंत्र क्या हैं, प्राणतंत्र क्या है, स्नायुतंत्र क्या है, ग्रन्थितंत्र क्या है, नाड़ीतंत्र क्या है, प्राणतंत्र क्या है, शरीर में कितने प्रकार के अग्नि हैं, कितने प्रकार के प्राण हैं, आकाश क्या है, शरीर में पृथ्वीतत्त्व का प्रतिनिधित्व क्या करता है, जलतत्त्व का प्रतिनिधित्व क्या करता है, अग्नितत्त्व कैसे प्रगट होता है ? इन सबका सामान्य ज्ञान हो जायेगा। रसोई करनी है, तो केवल चावल कैसे पकाना

यह सीखने से नहीं चलेगा। सब प्रकार की रसोई बनाना आ जाये, तब जो बनाना हो बना सकते हैं। इसलिए समग्र का सामान्य ज्ञान और विशेष का विशेष ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा। मेरी यह सूचना है कि शुद्धीकरण के लिए पातञ्जल योग का सामान्य ज्ञान आप प्राप्त कर लें।

आप मेरे पास बहुत छोटी उम्र में तो आये नहीं हैं, बड़ी उम्र में आये हैं। पक्के घड़े होते है, वैसे आप आये है; लेकिन मनुष्य जन्म की यह ख़ूबी है कि सत्तर–अस्सी साल की आयु में भी वह शुरू करे तो कहीं न कहीं पहुँच सकता है। इसलिए जो भी अपने मतलब का सामने आये उसे ग्रहण करो। यह योगशास्त्र चौरासी आसन बताता है। उनमें से आपको जो अनुकूल आये, वह ग्रहण करो। चौरासी आसन तो वह सीखेगा, जिसे योग का शिक्षक बनना है; इस क्षेत्र में specialization करना हैं या योगी बनना है या हठयोगी बनना है। लेकिन आप तो चौरासी में से चार-छः आसन ही सीख लें। फिर उनको छोड़ना नहीं; क्योंकि हज़ारों वर्षों की साधना से वे पुनीत बने हैं। वे आसन तपःपूत हैं। लाखों ने किये और उसमें से उन्होंने शुद्धि पायी है। शरीर में मज्जा, स्नायु और त्वचा हैं। उनकी शुद्धि आसनों से होगी। प्राणायाम के सब प्रकार सीखने की आवश्यकता नहीं है। दो–चार ही सीखने पडेंगे। उसके भी बारह प्रकार हैं। पूरक, कुम्भक और रेचक किसे कहते हैं यह जान लेना चाहिए। inhaling, retaining, exhaling – ये किसी भी धक्के के बिना हों। लयबद्ध श्वास सहजता से भीतर लेना, उसको भीतर रखने की शक्ति बढ़ाना। फिर मृदुता से बाहर छोड़ना, इतना सीख लेना। जितना समय श्वास भीतर रहेगा, उतना शुद्धीकरण होगा। वह भीतर को शुद्ध करता चला जाता है; क्योंकि उसमें अग्नितत्त्व है। और फिर उसको बाहर छोड़ते हैं। बाहर छोड़ दिया तो दूसरा श्वास नहीं लेना, वह बाह्य कुम्भक का समय है। बाह्य कुम्भक का समय बढ़ाना। इतनी हमारे मतलब की बात है। जैसे 'अंतः कुम्भक' का समय बढ़ाना है, वैसे 'बहिः कुम्भक' का समय भी बढ़ाना है।

योग में मार्गदर्शन लें

अगर आप भस्त्रिका (धमनी की तरह श्वास लेने और बाहर निकालने की प्राणायाम की एक प्रक्रिया) करने जाओगे तो भीतर घर्षण

हो जायेगा, गर्मी पैदा हो जायेगी और internal haemorrhage (आन्तरिक रक्तस्राव) हो सकता है। कई लोग दो सौ, तीन सौ भस्त्रिका करते हैं; लेकिन ऐसा करने से व्याधि पैदा होती है। भस्त्रिका के साथ, जब एक सौ भस्त्रिका हो जाये, तब दस मिनट के बाद मक्खन खाना चाहिए। बारह-तेरह भस्त्रिका के बाद अगर दूध पी लें तो चल सकता है। लेकिन इनसे ज्यादा भस्त्रिका करने से शरीर में गर्मी पैदा होती है। भीतर की नसों में घर्षण पैदा होता है।

एक बहन् रहती थी आबू में। हमें कुछ कहा नहीं और पता नहीं कितनी भस्त्रिकाएँ बढ़ा दीं। मुझे भी पता नहीं कि वे कितनी भस्त्रिका तक पहुँची थीं। ६० पार की हुई बड़ी उम्र की, गृहस्थाश्रम में से गुज़री हुई बहन थीं । सोचा ही नहीं उन्होंने; पता नहीं कैसे, बस धुन चढ़ गई। हमें मालूम ही नहीं और गर्मी बढ़ गई। अब गर्मी बहु बढ़ गई तो उन्होंने सोचा कि गर्मी बहुत बढ़ गई है, घी खाना चाहिए। तब उन्होंने घी का प्रमाण एकदम बढ़ा दिया। इतना बढ़ा दिया कि लिवर – जो भस्त्रिका करने से बहुत कमज़ोर हो गया था, उस पर ज़ोर पड़ा। घी हज़म नहीं हुआ। तो joints दुखने लगे। अब देखो, आदमी कैसा करता है ? फिर joints दुखते हैं, तो गूगल खाने से गर्मी और बढ़ जाती है।

अब यह मेरी समझ में नहीं आया। वैद्य को उन्होंने बतलाया नहीं कि ऐसा उपद्रव मचा रखा है। और हमें भी पता नहीं कि इतनी भस्त्रिकाएँ वे कर रही हैं। मैंने कहा, ''क्यों ऐसे कमज़ोर हो गये ?'' उनकी त्वचा का रंग बिलकुल स्लेटी हो गया। मैंने कहा, ''यह बात क्या है ?'' उन्हें लगा कि अब मृत्यु पास आ गई। अपने हाथ से अपनी मृत्यु पास लाओगे, तो कोई क्या करे ? उन्हें अपनी उम्र का भी ख्याल नहीं रहा कि साठ पार कर चुके हैं। उन्होंने कहा ''घी खाया तो ऐसा हुआ, गुग्गुल खाया तो ऐसा हुआ। वैद्यजी ने बहुत दवायें दीं। अचानक मेरे मन में आया कि बहन, आप प्राणायाम तो नहीं करतीं ?'' बोली ''हाँ, करती हूँ न !'' मैंने पूछा, ''भस्त्रिका तो नहीं करतीं ?'' उन्होंने कहा – ''हाँ, हररोज डेढ़-सौ दो सौ करती हूँ।'' यह सुनकर मैंने सिर पर हाथ रखा। मैंने कहा, ''क्या मर जाना है। भस्त्रिका के साथ साथ मक्खन खाना पड़ता है। घी से काम नहीं चलेगा।

माँ मेरी, आज से भस्त्रिका बन्द कर। सात दिन तक खबरदार, नाम लेगी तो !" घी भी लेना हो तो पिघलाकर पानी में पीओ, दूध में नहीं। आपको क्या बताऊँ? तीन दिन में उनकी तबीयत ठिकाने आ गई।

इसलिए मैं कहती हूँ उसमें से अपने काम की बात लेना। आप अति करें किसी चीज़ की और फिर कहेंगे, बहन ने कहा था, पतंजलि ने कहा था। या फिर कहोगे कि ऐसा पढ़ा था। अति में नहीं जाना है।

अति सर्वत्र वर्जयेत्

आप कहेंगे कि आपने यह कैसे किया? अरे भाई ! मैं छोटी थी तब। पाँच साल से बीस साल की उम्र – यह मेरा साधना-काल था। वह शरीर के बढ़ने की उम्र थी। ऐसे पागल जैसे अवैज्ञानिक प्रयोग मैंने उस वक्त किये, जिसकी थोड़ी क़ीमत आज मुझे चुकानी पड़ती है। लेकिन पाँच से बीस साल में मैंने मेरा काम खतम कर दिया साधना का। पागल जैसे प्रयोग मेरा नुकसान नहीं कर पाये; क्योंकि वह समय शरीर के बढ़ने का था। इसलिए Compensate होता गया। तो कहने का मतलब यह कि प्राणायाम में अतिरेक नहीं करना। प्राणायाम के अतिरेक से दूसरी व्यक्ति को रोकना पड़ा – वह था जगत, हमारी प्रभा का भाई ! अतिशय भस्त्रिका प्रयोग करके उसने अपने फेफड़े इतने कमज़ोर कर लिये थे कि कमर का ऊपरी भाग प्रमाण से अधिक बढ़ गया। dilation of the lungs जैसा हो गया। जब हमें पता चला, तब बहुत देर हो चुकी थी। उसको घी या मक्खन खाने की बात का पता नहीं था। परिणामस्वरूप respiratory system was effected and one day he dropped dead.

इसलिए मैंने कहा कि हमारे प्रवचन सुनना भारी जिम्मेदारी का काम है। लहर लगी, भावना में आ गये और अतिरेक कर गये। उसकी जिम्मेदारी मुझ पर आती है। साधना के विषय में बोलती नहीं हूँ। व्यक्तिगत रूप से किसीको थोड़ा बहुत कह देती हूँ; लेकिन अब कहने का समय इसलिए आया कि केवल ज्ञान से, केवल समझने से आपका काम नहीं बन रहा है। केवल समझने से बन जाये तो उत्कृष्ट है। इन सब में उतरना नहीं पड़ता। नहीं हो सकता है तो चलो, शुद्धीकरण करो; लेकिन प्रमाण में करो, मर्यादा में करो। तो आपके और मेरे काम के केवल बारह प्राणायाम हैं,

इतना समझ लो। प्राणायाम – पूरक कुम्भक रेचक यह एक प्राणायाम हुआ, तो ऐसे बारह करो, काम बन जायेगा। इससे अधिक की आपके शुद्धीकरण के लिए ज़रूरत नहीं। दीर्घ श्वास, प्रदीर्घ कुम्भक और मृदु उच्छ्वास। अच्छा तो चलो, मैं कह रही थी कि आसनों से स्थूल शरीर की, स्नायुओं की शुद्धि होगी और प्राणायाम से आपके अग्नितत्त्व की, प्राणतत्त्व की और त्वचा की। प्राणायाम करनेवाले की त्वचा का रंग बदलना ही चाहिए। उस पर किसी प्रकार की श्यामलता, किसी भी प्रकार की मलिनता रह ही नहीं सकती। उसमें एक प्रकार की तेजस्विता रहती है।

आहार-विज्ञान को समझ लें

खैर ! तो ये दो हुए। नाड़ीतन्त्र, प्राणतन्त्र, त्वचा – उनकी शुद्धि प्राणायाम और आसनों से हो गई। अब अन्दर की शुद्धि के लिए आहार एवं औषधि। ऋतु-अनुकूल आहार लेना चाहिए। गरीब से गरीब आदमी भी अपने शरीर की शुद्धि सामान्य से सामान्य आहार से रख सकता है। १९७९ की बात है। आप जिनको विमला कहते हैं, उनकी बायीं तरफ वक्ष में बहुत बड़ी ग्रन्थि हुई। लोग क्या कहेंगे – दौड़ो डॉक्टर के पास, Biopsy कराओ। हमने वैद्य को अहमदाबाद बुलाया। ज्ञानेश्वरी का पारायण शुरू करना था। मैंने कहा, "बोलो भाई, क्या कहते हो ?" वे बोले, "हमारे आयुर्वेद में 'कैन्सर' शब्द तो है नहीं ? कर्क रोग है। हम तो ऐसा जानते हैं कि वात, पित्त और कफ से इनकी विषमता से व्याधि उत्पन्न होते हैं"। मैंने कहा, "चलो, आप उपचार शुरू करो ।" लेकिन सामान्य व्यक्ति कैसे उपचार करेगा; इसको भी तो देखना है, तो वनस्पति–औषधि आप दोगे ? उन्होंने कहा, "हाँ" । वृक्षों का नाम देने की ज़रूरत नहीं है । एक का पंचांग सेवन हमने किया । उसी वृक्ष की कली, उसकी आंतर्छाल, उसीकी ही जड़ें । और आज अनुभव से कह सकते हैं, ऐसी यदि किसी को तकलीफ़ है, Milk gland बढ़ गई है तो एक वृक्ष है, जिसके पंचांग सेवन से गरीब से गरीब स्त्री के भी उपचार हो सकते हैं । नहीं तो ऐसा देखा कि ले गये डॉक्टर के पास, काटो और छाँटो और पता नहीं दवाखाना तो क्या है ? कसाईखाना है । with all due opologies for doctors – मैं यह कह रही हूँ ।

खैर, सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी ऐसा कर सकता है, जिससे योगाभ्यास भी हो सकता है और झख मारेंगे सब बड़े-बड़े क़ीमती आहार, आप यदि अंकुरित मूँग का रोज सेवन करेंगे । चार साल से मैं कर रही हूँ । नहीं किया है, वह आपसे नहीं कहूँगी । लेकिन Lowest starch and highest protein. ये आपको मूँग मे मिलेंगे । दाल मे नहीं मिलेंगे, लेकिन मूँग में मिलेंगे । और भी एक highest protein low starch वाला अन्न है चना । लेकिन चना पहाड़ पर सबको अनुकूल नहीं पड़ता । हमें अनुकूल नहीं पड़ा । हमने प्रयोग करके देखा है। किसीको अनुकूल हो भी सकता है । और जिसको आप Anti-septic, Anti-biotic कहेंगे वह है मेथी । मेथी को अंकुरित करके आप खायें और जितने प्रकार के Anti-biotics ऐलोपथी में हैं, उनकी बराबरी मेथी कर सकती है । ये तो दो-तीन नमूने आपको बतलाये । अंकुरित करके खायें । इसको अंकुरित करके खाने से उसकी जो गर्मी है, जो नुकसान कर सकती है, वह निकल जाती है । तो कहने का मतलब यह है कि योगाभ्यास करने से लोगों को लगता है कि योगाभ्यास अमीरों का काम है, लेकिन ऐसा नहीं है । गरीब और मध्यम वर्ग का व्यक्ति भी ऐसा कर सकता है । आगे चलें ? इस विषय को छोड़ना पड़ेगा। लेकिन मैं कहती हूँ, आहार से शुद्धि हो सकती है । आहार-शुद्धि और आहार से शुद्धीकरण साधने के लिए कोई दो-तीन महत्त्व के नियम है । एक तो यह है कि सूर्यास्त के बाद का भोजन वर्ज्य करो – छोड़ दो । सूर्यास्त के बाद पाचनतन्त्र जो हैं, वह बहुत काम नहीं कर सकता । सूर्योदय से सूर्यास्त तक वह कमल की तरह खिला रहता है और वह पचन कर सकता है । सूर्यास्त के बाद वह पाचनतन्त्र बन्द होता है, अन्दर आहार लेना नहीं चाहता है । जो भी आहार रात्रि में लिया जाता है, उसका बोझ पड़ता है । आँतों पर, मूत्राशय पर, लिवर पर, जठर पर और हृदय पर बोझ पड़ता है ।

इसलिए पहला नियम यह है कि रात्रि-भोजन बन्द करो । सूर्यास्त के बाद नमक, मिर्च-मसाला, तेल जो भी खाने में आयेगा, उसका fermentation होगा । ऐसी चरबी बढ़ेगी कि उसका पचन नहीं हो सकेगा । सूर्यास्त से सूर्योदय तक शरीर में fermentation की क्रिया

होती है । अगर लेना ही पड़ता है सूर्यास्त के बाद भोजन, तो दूध लें, या दूध महँगा पड़ता है तो मूँग का उबाला हुआ पानी लें, बिना नमक का । आपको पूरा पोषण मिल जायेगा । खुराक पूरी तरह से मिल जायेगी । तो एक नियम हुआ, रात्रि-भोजन साधक वर्ज्य करे । अब दूसरा, दिन में जो भोजन लेना है, उससे शरीर में fermentation हो ऐसे द्रव्य कम-से-कम डालें, आवश्यक हैं वही डालें । कल मैंने कहा था – कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौष – ये तीन महीने ऐसे हैं । नमक, मिर्च, खटाई जो भी खाना है उतना खा लें । माघ तक चला जायगा । दीवाली के बाद से शुरू करके दो-चार महीने जाड़े के जो हैं, उनमें आपके खाने का शौक़ पूरा कर लें । गर्मी में आप नमक और मिर्च-मसाले का प्रमाण बढ़ायेंगे, तो झूठी प्यास पैदा होगी । तो fermentation कम हो ऐसा करो । यह नहीं कि नमक, मिर्च, खटाई एकदम छोड़ दिया । खानी है खटाई तो आँवला खाओ । अनार-दाना खाओ । आँवला सुखाकर रखो और उसका चूर्ण पानी में मिलाकर; चटनी जैसा बनाकर खाओ । मीठा, ताज़ा दही खाओ ।

इस प्रकार दिन में भी fermentation वाला द्रव्य कम करें। साधक की बात कर रही हूँ भाई ! ऋतु के अनुकूल, अवस्था के अनुकूल, आर्थिक स्थिति के अनुकूल fermentation न हो ऐसा आहार लो। अनुभवसिद्ध और एक सूचन करूँ कि भोजन से आधा घण्टा पहले, पानी पिएँ या भोजन के एक घण्टे बाद पानी पिएँ। भोजन के साथ-साथ पानी पीते जाओ, खाते जाओ और पानी पीते जाओ, ऐसा न करो तो अच्छा; क्योंकि ऐसा करने से स्नायु ढीले पड़ जाते हैं। The process of aging starts before you are already aged.

अन्तःशुद्धि के लिए नादोपासना

अब अंतःशुद्धि के बारे में सोचें । स्थूल का विचार हमने कर लिया। अब मैं सूक्ष्म में आती हूँ। तो अंतःशुद्धि नाद द्वारा हो सकती है । प्राणायाम में अग्नितत्त्व है, उसका उपयोग कर लिया, शुद्धीकरण के लिए । अब नाद यानी मन्त्रयोग। नाद से शुद्धि होगी । आप जो जप करते हैं, मन्त्र बोलते है उससे शुद्धि होती है। नाद में भी अग्नितत्त्व और वायुतत्त्व हैं। तो जिसको process of purification करना है, वह अपनी अनुकूलता के

अनुसार, इच्छानुसार ॐकार, नवकार, कुरान की आयतें, जो कोई भी, आपकी मर्जी की बात है। उसका रटन करें -- जोर से, वैखरी वाणी से। ॐकार बहुत सुन्दर नाद है। ॐ – वह किसी एक धर्म का नहीं है। ॐकार से बहुत जल्दी शुद्धि होती है। तो ॐकार जपो कि नमस्कार (नवकार) जपो, अल्लाह कहो कि रसूलल्लाह कहो, जो भी कहो, पाँच-दस मिनट बहुत हो गया, अपने काम के लिए इतना पर्याप्त है। यदि बहुत आनन्द आया तो बीस मिनट। उसके आगे न चलना। नहीं तो गर्मी बढ़ेगी। बोलते हैं, एक घण्टे के प्रवचन में, जो गर्मी बढ़ती है, वह चार मील चलने में नहीं बढ़ेगी; क्योंकि नाभि से लेकर मस्तिष्क तक की सभी नाड़ियों में झनझनाहट घण्टे तक चलती है। बोलते हैं तब और बोलने के बाद एक घण्टा चलती है। The heat is stimulated by the act of speech. तो मैं कह रही थी कि शुद्धीकरण में मन्त्रयोग काम देता है, नादयोग काम देता है। आप हाथ में तंबूरा लेकर ॐ ॐ बोलो, कोई बात नहीं !

सेवार्थे श्रमकार्य

तो शुद्धीकरण के लिए हठयोग, उसके बाद नादयोग या संगीत और मन्त्रयोग यानी जप और अन्त में कह दूँ कि सर्वेन्द्रियों से दिन में कोई एकाध घण्टे तक – आधे घण्टे तक ऐसा कर्म कीजिए, जो सर्वथा दूसरों के लिए हो। जिसमें से आपको कुछ नहीं मिलनेवाला। उसको सेवा कहो, उसको उत्पादक परिश्रम कहो, उसको श्रमदान कहो। कुमीबहन दो घण्टे अस्पताल में जाकर बैठती हैं । चालीस-पचास बच्चों को दूध-पाउडर से दूध बनाकर देती हैं। उनको क्या मिलता है इससे ? और गरीबों को दवाएँ देती हैं – इसमें से उनको कुछ नहीं मिलनेवाला। अब इसमें से मनुष्य प्रतिष्ठा लेना चाहेगा, तो वह बँध जायेगा। देने के कर्म में से लेना चाहोगे, तो लेने के देने पड़ जायेंगे। ऐसा देना कि जिसमें से वापस कुछ लेना नहीं। प्रतिष्ठा नहीं, नाम नहीं, कीर्ति नहीं, कुछ भी नहीं। तब वह कर्म शुद्ध होगा। उसको जो आपने सौदा बना दिया कि दो घण्टे मैंने दवा दी, तो मामला खतम ! The desire for fame or prestige or reward nullifies your doing it. तो फिर उसमें कष्ट हुआ, तप नहीं। आधा या एक घण्टा ऐसा काम करें कि उसमें से आपको कुछ मिलनेवाला नहीं

है। तो अहंकार के कारण जितना कल्मष-कषाय इकट्ठा हुआ है, उसको धो डालेगा यह कर्म। और दूसरा कोई कर्म नहीं, जो धो सके। अहंकार और सर्वेन्द्रियों को improve करेगा, तो वह कर्म आपकी मिल्कियत नहीं है। बगीचे में काम करना है, जिसका माल आप खानेवाले नहीं हैं, तो सर्वेन्द्रियों की शक्ति लुटाकर कुछ ऐसा परिश्रम करें, जिससे शुद्धि होगी।

शुद्धि द्वारा शक्ति-स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति

शुद्धीकरण का विषय इतना प्रिय है। स्वाध्याय से शुद्धि होगी; क्योंकि अज्ञान जाता है और शुद्ध ज्ञान आता है। परार्थ किये हुए जो कर्म हैं, उससे यह अहंकार की मलिनता घटती है। रामकृष्ण परमहंस कहते हैं कि सोने के लोटे को रोज माँजना नहीं पड़ता है। पीतल का हो तो हर रोज माँजना पड़ता है। पंचमहाभूतों की काया है, उसको रोज़ घिसना ही चाहिए। ऐसे शुद्धीकरण करते करते स्थूल शरीर शुद्ध होगा। नाड़ीतन्त्र शुद्ध होगा। आहार शुद्ध होने के कारण धातु-साम्य निर्माण होगा और मन्त्रयोग, नादयोग से भीतर की शुद्धि होगी। शुद्धि के साथ चित्त में जो आत्मसत्ता है, परमात्मसत्ता है वह अपने आपमें जागृत होगी। उसको जगाना नहीं पड़ेगा। understanding – बोध अपने आप जागृत होगा। शुद्धि ही मानव-जीवन की शक्ति है। मैंने कहा था कि जो शक्तिरूप से परमात्मा को ग्रहण करता है, उसमें जैसे जैसे शुद्धीकरण होगा वैसे विकार की जगह विचार की शक्ति, विचारों की जगह ज्ञान की शक्ति, ज्ञान की जगह बोध की शक्ति जागृत होती जायगी।

[२०-४-'८१, माउन्ट आबू]

३. अवधान-योग की सहजावस्था

परमात्मा को जो व्यक्ति-रूप में ग्रहण करना चाहते हैं, वे भक्ति मार्ग पर किस प्रकार चल सकते हैं ? जो शक्ति-रूप में प्रभु को ग्रहण करते हैं, वे शुद्धीकरण के योगमार्ग को किस प्रकार पकड़ सकते हैं ? यह सब हमने देखा। खास तौर पर व्यक्ति-रूप से परमात्मा को ग्रहण करनेवाले, भक्तियोग पर चलते हैं। शक्ति-रूप से ग्रहण करनेवाले तप या शुद्धीकरण के मार्ग पर चलते हैं। इन दोनों में कर्म प्रधान है, ज्ञान गौण है।

सिद्धयोग का प्रचार पूरे भारत में

अब आज बात होगी अवधान-योग की, जिसको सहजयोग कहा जा सकता है। सिद्धयोग भी कहते हैं। भारतवर्ष एक विशाल देश है। एक ही पन्थ पर चलनेवाले भिन्न-भिन्न प्रदेश के लोगों ने एक ही मार्ग को अनेक नाम दिये हैं। 'सिद्धयोग' यह नाम कश्मीर से पंजाब, सिन्ध होते हुए, सौराष्ट्र के गिरनार विभाग तक पहुँचा है। जो जानते हैं और मानते हैं कि जन्म से ही सब सिद्ध हैं, लेकिन अपनी सिद्धावस्था को पहचानते नहीं हैं। अपनी सिद्धावस्था को पहचानने का जो योगशास्त्र है उसको 'सिद्धयोग' कहा। आधुनिक युग में यानी पिछले सौ वर्षों में सिद्धयोग के सबसे बड़े प्रवक्ता सिद्ध कलन्दरशाह थे। वे सिंध से कच्छ में आये और कच्छ से उनकी परंपरा बनती चली। जिसमें भाण, मुरार, राय, भीमजी, दासीजीवण -- इन सबका समावेश होता है। सिद्धयोग नानकशाह और कबीरजी के द्वारा पंजाब के दूसरे विभागों में, उत्तर प्रदेश, कुछ राजस्थान, कुछ मध्यप्रदेश में विस्तृत बन गया; जिसको 'सहजयोग' कहा गया। 'सहजयोग' शब्द कबीर साहब का है। वह बंगाल, बिहार होता हुआ 'सहजिया पन्थ' बन गया है। बंगला में, मिथिला में और नेपाल में कुछ विभागों में हमने उसको 'सहजिया पन्थ' के रूप में सुना है। आप जानते है कि भूदान आन्दोलन के निमित्त से सारे देश में घूमते हुए भारतवर्ष के आध्यात्मिक साधना पन्थ कितने हैं, उनका अनायास अभ्यास हम करते रहे। यह सहजिया पन्थ के लोग, जो बाउल कहलाते हैं, उनका बड़ा रहस्यवादी पन्थ है बंगाल में, आसाम में, बिहार में, नेपाल में, दक्षिण विभाग की तराई में। महाराष्ट्र में वैष्णव संप्रदाय के संस्थापक ज्ञानेश्वर महाराज ने इसको 'मधुराद्वैत' योग

कहा। और भी एक नाम है नाथपंथ में 'अनुपाय -योग'। अनुपाय योग, अनुत्तर दशा यानी जिसमें कोई उपाय करना नहीं पड़ता है और आजकल की आधुनिक भाषा में उसको 'अवधान -योग' कहते हैं। यह अवधान योग Awareness का योग भारत में और मध्यपूर्व के सूफ़ियों में तथा चीन–जापान के कई विभागों में जैन धर्म और बौद्ध धर्म के नाम से प्रचलित है। सनातन पद्धतियों के रूप बदलते हैं, सत्त्व नहीं बदलता। उसकी अभिव्यक्ति बदलती है; उसके निवेदन, निरूपण और प्रतिपादन की शैली बदलती है। सत्य का स्वरूप बदल नहीं सकता। तो आज आपसे बात करेंगे अवधान–योग की। सहज योग, सहजात्मक योग, सिद्ध -योग, अनुपाय योग -- इतने नाम हैं।

दक्षिण के बारे में इसलिए नहीं कहा कि दक्षिण की भाषाओं का इतना परिचय नहीं होने से, प्रवास के दरम्यान विशेष सम्बन्ध नहीं रहा। घूमते थे, थोड़ा–बहुत समझते थे। वेदान्त का, अद्वैत का मार्ग वहाँ चला। लेकिन हमारे प्रवास के दरम्यान दक्षिण की भाषाओं का इतना अध्ययन नहीं था। दक्षिण में इसकी शाखा जरूर होगी। इसके थोड़े रूपांतर प्रत्यय -विद्यायोग में हैं। अभिनवगुप्त के कश्मीरी शैवदर्शन में हैं और मैं मानती हूँ कि दक्षिण में, खास करके मैसूर स्टेट में दत्त की उपासना है। वहाँ 'अवधूत -योग' नाम से वह प्रसिद्ध है। लेकिन यह केवल मेरा अवलोकन है। इससे पहले मैंने छः -सात नाम लिये, उनको इसके साथ जोड़ना नहीं। अवधूत -योग नाम से कर्णाटक में, मैसूर राज्य में यह प्रचलित है - याद आया।

आप जैसे अपने घर के कमरे जानते होंगे, वैसे हम हमारे भारत को जानते हैं। एक-एक कमरे में क्या-क्या वस्तु रखी है, उसका जैसे आप वर्णन करें; वैसे मुझे भारत के सभी प्रदेश, सभी लोग, सभी जातियाँ अपने देह से भी ज्यादा प्रिय हैं। बड़ा अद्‌भुत देश है यह।

अपना मूल स्वरूप : आत्मा

अब यह जो 'अवधान -योग' है, वह कहता है कि जो परमात्मा है यानी सर्वव्यापक है, वही आपके देह में व्याप्त हैं। आप आत्मा हैं और जैसे किसी वस्तु पर वेष्टन (cover) है या फल पर छिलका है, वैसे आत्मा का वस्त्र है या छिलका है देह। ''मैं देह हूँ'' यह मान लेना अज्ञान है, देह के दोषों के साथ तादात्म्य है। ''मेरे दोष, मेरे गुण, मेरी कमजोरियाँ'' -- यह

वस्तुतः देह के हैं और देह प्रारब्ध-प्राप्त है। इसलिए देह के दोषों के लिए आप जिम्मेवार नहीं, क्योंकि आप में कोई कमज़ोरी हो नहीं सकती। आप हैं आत्म-स्वरूप। आप नित्य शुद्ध-बुद्ध-मुक्त हैं।

"मोक्ष कह्यो निजशुद्धता", "सर्व जीव छे सिद्ध सम, जे समझे ते थाय" – श्रीमद् राजचन्द्र ने इस बात को बहुत गहराई से पकड़ा हैं। जैसे ज्ञानेश्वर ने पकड़ा वैसे ही श्रीमद् ने, अपने-अपने ढंग से । सहजात्मक योग के महान् प्रवक्ता श्रीमद् राजचन्द्र अभी-अभी गुजरात में हो गये। सहजात्मक स्वरूप, सिद्धावस्था, सिद्धावस्था का ज्ञान और भान – ये उनके आत्मसिद्धिशास्त्र में और सभी वचनों में आते हैं, पत्रों में आते हैं।

मौन की चाबी दी श्रीमद् ने। कर्म छोड़ना नहीं, कर्म भक्ति के लिए, प्रीति को प्रकट करने के लिए, शुद्धीकरण के लिए उपयोगी है। कर्म करते हुए देख लेना कि चित्त में तर-तम भाव न हो। जिसकी जैसी प्रकृति, वैसा उसका साधना-पथ होगा।

मंज़िल एक – पन्थ अनेक

हमारे चित्त में किसी के लिए कोई अनुकूलता, प्रतिकूलता नहीं है, सब समान हैं। जब एक-एक का विश्लेषण करते हैं, तो आपका मन ललचाता है – अरे भक्तिपथ पकड़ें । अवधान-योग पकड़ें। ऐसे लालच में न पड़ना। हम तो निरूपण करके सामने रख रहे हैं, इसमें से आपका कौन सा मार्ग है, वह ढूँढकर आप पकड़ लेना। गन्तव्य स्थान सबका एक ही है और परिणति भी एक ही – सत्य की उपलब्धि में है; लेकिन संस्कारों की भिन्नता के कारण साधनापद्धति भिन्न हो जाती है, प्रारम्भ भिन्न हो जाता है।

जो परमात्मा है, God कहो - Divine कहो, वह एक ही है। तुम आत्म-स्वरूप हो। "You are Divine" – श्रीअरविन्द ने समझाने का प्रयत्न किया। 'तत्त्वमसि' उपनिषदों ने कहा। इसे समझो नहीं तो यह समझ का अभाव यानी अज्ञान ही दुःख का मूल है। वही बन्धन है और समझ ही मुक्ति है।

"जेह स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनन्त ।
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरु भगवन्त ॥"

अपना स्वरूप मैं जानता नहीं था। वह मुझे समझा दिया। अपने पास से मुझे कुछ दिया नहीं। देते क्या ? मुझमें क्या कमी थी ? मैं वही तो

था, जो गुरु हैं। कैसा मजे का प्रारम्भ है आत्मसिद्धि का !

सच्ची समझ विकसाना ही साधना

राग–द्वेष–अज्ञान ये तीन ग्रंथियाँ हैं, जिनके कारण मैं जानता नहीं हूँ कि मैं आत्मा हूँ। यह अज्ञान ही बन्धन है, तो जानो - यही साधना है। स्वरूप का अवधान रखो – "स्वरूपानुसन्धानं भक्तिः"–स्वरूप के अनुसन्धान से पलभर भी अलग न होना – इसीको भक्ति कहते हैं। जो प्रभु से पलभर भी विभक्त नहीं है। पहले स्वरूप समझना और फिर उसका अनुसंधान रखना। अनुसंधान रखने के लिए निरन्तर जागृति रखनी पड़ती है। मैं आत्मा हूँ। आत्मा नित्य शुद्ध–बुद्ध है तो बन्धन उपजानेवाला व्यवहार शोभा नहीं देता, राग–द्वेष पैदा करनेवाला व्यवहार स्वरूप विरोधी है। इस प्रकार चौबीसों घण्टे स्वरूप का ध्यान रखना पड़ता है।

"विपद् विस्मरणं विष्णोः संपन्नारायणस्मृतिः ।"

वैसे ही "स्वरूपसंस्मृतिः सम्पदा । स्वरूपविस्मृतिर्विपदा ॥"

गीताजी के अन्त में अर्जुन यही तो कहते हैं –

"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा ।"

१८ अध्याय गीता सुनकर यही हुआ कि मोह गया । मैं क्या हूँ ? यह जगत् क्या है ? इससे मेरा सम्बन्ध क्या है ? यह सब जो भूल गया था, वह स्मृति वापस आयी है। इसलिए "करिष्ये वचनं तव"– हे वासुदेव ! आप जो कहेंगे वही करूँगा।" यह सुनकर बहुत चतुर कृष्ण कहते हैं – "यथेच्छसि तथा कुरू" अर्थात् मैंने तो सब कुछ तुझे समझा दिया है । अब तेरी जैसी इच्छा हो, वैसे तू करना ! यह गुरुशिष्य-सम्बन्ध का मधुरतम स्वरूप श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद में देखने को मिलता है ।

समझ पर तत्काल आचरण

तो, अवधानयोग में स्वरूप समझने का ही पुरुषार्थ है। समझने के सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। जो समझ आई उसको जीना है। उसमें समय का अन्तराल नहीं आने देना। जो समझ आई उसका तत्काल आचरण – यह पथ्य है यहाँ। Be aware of what you are. Be aware of your real nature. Be aware of the essence of your being. ईसा कहते थे — "Thou art in Heaven my Fathar ! Father is reborn

in the son." पिता–पुत्र अलग तो नहीं हैं, सजातीय है। दिखने में दो हुए, असल में हैं एक ही। – यह सम्बन्ध पहचान लिया। इतना समझ लेने से ईसा में कितनी ताक़त आई ? ऐसे ही मोहनदास करमचन्द गाँधी में समझ से ही तो इतनी ताक़त आई। वे महात्मा गाँधी बन गये !

सतत अनुसन्धान ही साधना

स्वरूप की समझ का सतत अनुसन्धान रखना, यही है साधना। वह कब करें ? कितना समय करें ? – यह पूछने की बात नहीं। भाई ! उठते-बैठते, खाते-पीते, रोते-हँसते हरदम यही याद रखो–

"हुं कोण छुं ? क्यांथी थयो ? शुं स्वरूप छे मारुं खरुं ?
कोना संबंधे वळगणां छे ? राखुं के ते परहरुं ?"

सीधी गणित जैसी सरल बात है। यही साधना है – स्वरूप समझना, उसका अनुसंधान या अवधान रखना, उसके अनुसार इन्द्रियों के मार्फ़त व्यवहार करना; इन्द्रियों को दुलार से सिखाना, मनाना और स्वरूप के अनुकूल व्यवहार करा लेना। इन्द्रियाँ कोई दुश्मन तो नहीं हैं, व्यवहार के लिए इन्द्रियाँ तो चाहिए ही। आत्मरति का आनन्द, स्वरूप–साक्षात्कार का आनन्द, सहजात्मक स्वरूप को प्रगट करने का आनन्द, इन्द्रियों के मार्फ़त ही होनेवाला है । इनको मना लें, सिखा लें, प्यार से सहयोग प्राप्त करें, यह पुरुषार्थ करना है।

भूलों का बचाव न करें !

इस साधना में दो बातों का ख्याल रखना होगा कि इसमें कौन विघ्न कर सकता है ? विघ्न को हटायें कैसे ? निर्विघ्न साधना के लिए पहली बात तो यह करें कि जब अपनी कोई भूल हो जाय, तब तत्काल खुद उसे क़बूल करें और जिसके प्रति वह भूल हुई हो, उसके पास जाकर अपनी भूल कबूल करके उससे माफ़ी माँगे। जैसे कि किसीके प्रति किसी भी निमित्त से हमें क्रोध आया, तो जब ध्यान में आये कि क्रोध आया है और क्रोध के अनुसार व्यवहार किया है, तभी जाकर माफ़ी माँग लें। क्रोध का अपने चित्त में समर्थन या बचाव न करने बैठें कि इस कारण आया, कम या ज्यादा आया। अहंकार यही चाल खेल जाता है। दोष दूसरों पर डालना चाहता है – परिस्थिति या आनुवंशिक आदत या कोई भी दलील ढूँढ लेता है। अन्दर मालूम है कि अपनी भूल है लेकिन अपने आपको अपनी बुद्धि से बचाना

चाहते हैं। अवधानयोग में चलना चाहते हैं तो इस आदत को छोड़ दें।

यह कर्म की मदद लेते हुए तप करना बड़ा कठिन है। यहाँ निर्णायक कोई दूसरा होगा नहीं। अपनी भूल को खुद आप ही जान सकते हैं। उसे स्वीकारकरके, माफ़ी माँगकर, आप ही भूल से मुक्त भी हो सकते हैं और उसका बचाव करके, उसे ढक–लपेट करके आप ही जख्म को बढ़ा सकते हैं। यहाँ सज़ा देनेवाला कोई दूसरा नहीं। अज्ञान बना रहेगा यही सज़ा है। और तो कोई आपको भला–बुरा कहने आयेगा नहीं, न निषेध करेगा। यहाँ तो आप ही गुरु, आप ही चेला। एक ही जिम्मेवारी स्वीकार करें कि दोष दिखाई दे तो उसका बचाव करके अपनी प्रज्ञा की संवेदनशीलता को कुण्ठित न करें। भूल के दुःख का शूल पूरी तरह बिंधने दीजिये भीतर।

अपना हाल तो यह है कि और दूसरे कोई भूल दिखा दें, तो फौरन दलील करके भूल का समर्थन कर देंगे। यहाँ तक कि जिन्हें 'गुरु' कह कर प्रणाम करते हैं, 'जीवन समर्पण कर दिया' कहते हैं, वे भी जब कोई भूल बतायें तो कुछ-न-कुछ दलील करके, वकालत करके, भूल की जिम्मेवारी कहीं न कहीं दूसरे पर डाल कर, खुद छटक जाना चाहते हैं। 'यह तो इस कारण से हुआ, उस परिस्थिति में हुआ...' यानी आप जो भूल कह रहे हैं वह गलत है। गुरु को प्रणाम करते हो, समर्पण की भाषा बोलते हो । पर समर्पण, शरणागति नहीं है।

शरणागति प्रभु के प्रति

इसलिए हम कहते हैं कि शरणागति प्रभु के प्रति रखो, व्यक्ति के प्रति नहीं; क्योंकि आप कितना ही विनम्रता का नाटक करो, जब भूल बताई जाती है तब समर्पण की क़लई खुल जाती है। आपका अहङ्कार घायल होता है, दुःखी होता है, कभी तो घायल नाग जैसा फुफकार भी उठता है।

यह बात कहते रहे हैं १२ साल की उम्र में विवेकानन्द अध्यात्म–मण्डल बनाया था तब से लेकर, भूदान में भारतभर घूमे; फिर ४० देशों में घूमना हुआ, उस सब के अनुभव के आधार पर। अरे ! सन्त के साथ, योगी के साथ सहवास आग के साथ खेलने जैसा है। इसलिए कहते आये हैं–

इन्क़िलाबे आग है हम, खेल हम से मत करो !
खेल ही के खेल में कहीं जल उठे घरबार सारा !
दूर हम से सब रहो !

कितना ही उत्कट जिज्ञासु हो; भूल बताये जाने पर अहङ्कार जब फन उठाता है, तब सहन नहीं होता। जिनको आप स्वायत्त गुरु बनायेंगे, उनका भूल दिखाना भी पसन्द नहीं आता।

आप अपने गुरु बनें

इसलिए भाई ! आप खुद ही अपने गुरु बनो ! और जब दोष नज़र में आयें; भूलें, कमज़ोरियाँ दिखाई दें, तब उनका अपने आपसे बचाव मत करो, ढँको नहीं उन्हें। तब अवधान-योग में गति बढ़ेगी, बल जागेगा। Avoid self defence, self-justification.

झट समझें, पट आचरें

दूसरी बात यह है कि जो चीज़ समझ में आये, उस पर आचरण तत्काल प्रारम्भ करो, उसे कल पर टालो नहीं। स्थगित न करो। समझ के अनुसार आचरण करने पर नतीजे क्या आयेंगे, उन्हें सहन कर सकूँगा या नहीं ? – ऐसा हिसाब करके कभी नहीं जीना ! बन्दगी में ज़िन्दगी सौदा नही है। सौदा संसारियों के लिए है। सौदा करके रहना हो, तो संसार में लौटो। शानदार सौदा करो। श्रेष्ठ वणिक बनो, उसमें कला है, चतुराई है, सब कुछ है। ऐसा सौदा करो कि जिसमें तुम्हारा घाटा न हो। यानी तुम्हारा मूलधन, जो सच्चिदानन्द स्वरूप है वह बिगड़े नहीं; लेकिन साधना सौदा नहीं है, अध्यात्म सौदा नहीं है। इसलिए नतीजों का हिसाब साधना में नहीं होता है। (हाँ, भोजन कितना करूँ, शरीर को क्या, कब, कितना अनुकूल है; यह तो देखना ही होगा।) व्यवहार सहजता से हो। उसमें कमज़ोरियाँ सामने आती हैं तो वे पकड़ी जायेंगी, उनका मान होगा और जागृति रहेगी। इसलिए अवधानयोग में – ''जो काल करे सो आज कर ले, आज करे सो अब कर ले'' – यह एक नियम है। दूसरा, अपनी भूलों का बचाव न करें।

अध्यात्म जीवन का अभिनय नहीं होता, नाटक नहीं होता । अभिनय साधना नहीं है। भक्ति का अभिनय, शरणागति का अभिनय और मुक्ति का अभिनय नहीं हो सकता। समझ में आये कि हमको कोई आधार चाहिए, परमात्मा का कोई व्यक्तिरूप चाहिए, तो आपको जो प्रिय हो वह स्वरूप ले लीजिए -- शिव हैं, अम्बा हैं, शारदा हैं, राम हैं, कृष्ण हैं, दत्तात्रेय हैं या जो भी आपको भाया हो ! प्रभु वही धारण करेंगे।

एक रामभक्त स्वर्णकार थे। वृन्दावन में उन्हें बुलाया गया था कृष्ण-मन्दिर में श्रीविग्रह का मुकुट बनाने के लिए। नाप लेना था। उन्होंने कहा, मैं तो अपने रामजी का ही दर्शन करता हूँ, कृष्ण-मन्दिर में जाऊँगा, तो आँख पर पट्टी बाँध कर जाऊँगा। वैसे ही गये और मुकुट का नाप लेने के लिए श्रीविग्रह को हाथ लगाया तो मुरली नहीं, त्रिभङ्गी मुद्रा नहीं, धनुष-बाण ही का स्पर्श हुआ। पट्टी खोली आँख की, तो कह बैठे—"कित मुरली, कित चन्द्रिका, कित गोपियन को साथ ? अपने जन के कारणे, जदुनाथ बने रघुनाथ।" उनका काम पूरा हुआ तो श्रीविग्रह फिर श्रीकृष्ण का !

भक्तिमार्ग

यह हो सकता है। इसलिए व्यक्तिरूप से ग्रहण करते हो, अपनी भावना, प्यार लुटाने की इच्छा हो, तो भक्तिपथ पकड़ें। पूरी तरह से फिर अपने मिट कर प्रभु के बनें और पूजा–अर्चना, भजन, तीर्थयात्रा, जो करना चाहें सो करें। हो सकता है, उसीमें अहङ्कार का विलोपन हो जाय। "मैं तेरा, मैं तेरा" कहते कहते 'मेरा' निःशेष हो जाय। यह है एक रास्ता।

तपोमार्ग

यह रास्ता पसन्द नहीं और जीवन की मूलभूत सत्ता ऊर्जा-रूप है, अखण्ड अक्षय शक्ति-स्रोत है ऐसी प्रतीति हो, उसका प्रत्यय पाना हो, तो वह शक्ति अपने में कैसे प्रकट होगी ? क्यों प्रगट नहीं होती है, इसकी गवेषणा होगी। अशुद्धि के कारण प्रकट नहीं होती, तो अशुद्धि कहाँ-कहाँ है उसे खोजकर दूर करने के प्रयत्न चलेंगे। स्थूल-सूक्ष्म सब स्तरों पर शुद्धीकरण—योग कहती हूँ। यह हुआ दूसरा रास्ता।

अवधानमार्ग

तीसरा पथ है अवधानयोग। यहाँ करने का कुछ नहीं, केवल समझना है और जीना है। यहाँ कुछ प्राप्त करने के लिए नहीं है। प्राप्त नहीं करना है। 'होना' – भर है। चौबीसों घण्टे जाग्रत्-प्रबुद्ध रहकर जीना है। You are on duty for 24 hours every day, alert on your toes. आपको खुद ही अपना पहरेदार बनना है। खुद ही अपना निरीक्षण करना है, जो भूलें दिखाई दें उन्हें सुधारना है।

यहाँ किसी शक्ति को सिद्ध या प्रकट नहीं करना है। कहीं से कुछ

कमाना नहीं है। यहाँ तो अपने सहजात्म स्वरूप के प्रकट होने में जो जो रुकावटें हैं, प्रत्यवाय हैं, विघ्न हैं, उन्हें हटाना है। कौन कौन से हैं वे विघ्न ? वे हैं अपनी त्रुटियों, कमियों, भूलों, कमजोरियों का बचाव करने की इच्छा और आदत तथा जो समझ में आया उसे आचरण में उतारने की शिथिलता, प्रमाद। इन्हीं के कारण निजरूप प्रकट नहीं होता।

प्रकृति के अनुसार पंथ पकड़ो

सामान्यतया तीन प्रकार की प्रकृति के लोग होते हैं। कोई उत्कट भावनाशाली और सौम्य स्वभाव के होते हैं । उन्हें भक्ति का मार्ग रुचता है, अनुकूल पड़ता है । वे उसे अपनायें। कुछ लोगों मे उत्कटता के साथ-साथ स्वभाव की उग्रता भी होती है। कितना भी घिसो पर सम्बन्धों में वह स्वभाव की उग्रता प्रकट हुए बिना नहीं रहती। प्याज–लहसुन को कितना भी धोयें या उबालें, उनकी उग्र गंध कहाँ जायेगी ? नीम–मेथी–करेले की कड़वाहट कैसे मिटे ? मिर्च तीखी ही तो रहेगी ? ऐसे ही जिनका स्वभाव उग्र है, उनको मैं कहती हूँ कि शुद्धीकरण का मार्ग पकड़ो। हठयोग करो। फिर मन्त्रयोग, नादयोग । आहार में क्या लेना क्या नहीं लेना, क्या करना–क्या नहीं करना, २४ घण्टे यही प्रवृत्ति चलेगी। पर यह सब शुद्धि के लिए होगा ''शुद्धयर्थे सर्वकर्माणि।'' शुद्धीकरण के लिए जो संघर्ष, जो पुरुषार्थ करना पड़ता है, उसमें इनकी उग्रता का सदुपयोग हो जाता हैं।

कुछ लोगों में उत्कटता के साथ सौम्यता भी है, उस पर फिर बुद्धि का प्राधान्य है, भावना का ऐश्वर्य कम है। उनको मैं कहती हूँ कि अवधान-योग पकड़ो।

आप अपनी प्रकृति परखो और उसके अनुसार मार्ग पकड़ कर चल पड़ो, कदम उठाओ। फिर कोई चिन्ता नहीं। प्रभु सबको सहाय देते ही हैं। सभी मार्ग प्रभु के ही धाम के हैं। आप अवश्य मंज़िल पर पहुँचेंगे। प्रभु को सहायक बनना ही पड़ता है। वे तो कहते हैं न –

''अर्जुना ! आम्हां भक्तां चे व्यसन।
भक्त आमुचे निज ध्यान।
ते कान्ता मी वल्लभ जाण।''

(२४–४–८१, अर्बुदाचल)

पिता का जो अशुभ से परित्राण करता है उसे 'पुत्र' कहते हैं। मेरी आत्मजा बन कर विमल ने मेरे लिए कुछ ऐसा ही किया। मेरे जीवन में मानो वह मेरी तीर्थरूपा माँ और जगदम्बा के वरदान के रूप में आई। पण्डितराज जगन्नाथ के लिए गङ्गाजी एक-एक सीढ़ी ऊपर उठीं, लेकिन मेरे जीवन में तो मानो गङ्गाजी की पावन धारा अप्रत्याशित रूप से आ गई।

दादा धर्माधिकारी

विमल प्रकाशन ट्रस्ट
अहमदाबाद